उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
हल्द्वानी

MAJY-504

प्रथम सेमेस्टर

ग्रहण, वेध-यन्त्र तथा गोल परिचय

मानविकी विद्याशाखा

ज्योतिष विभाग

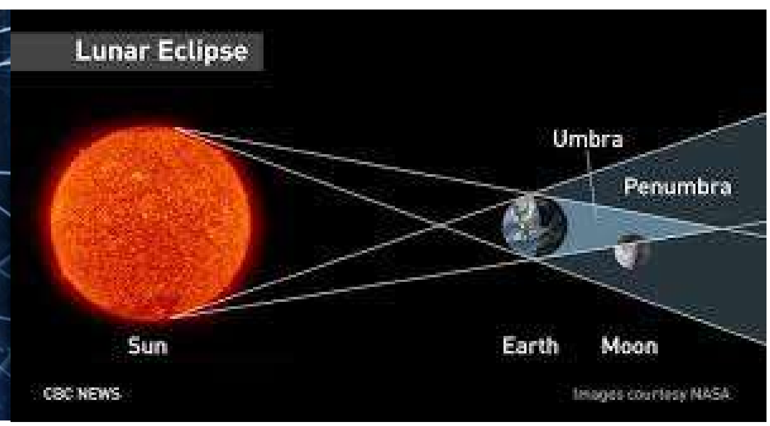

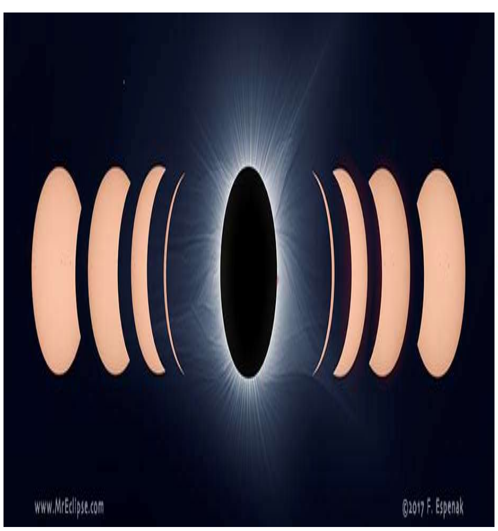

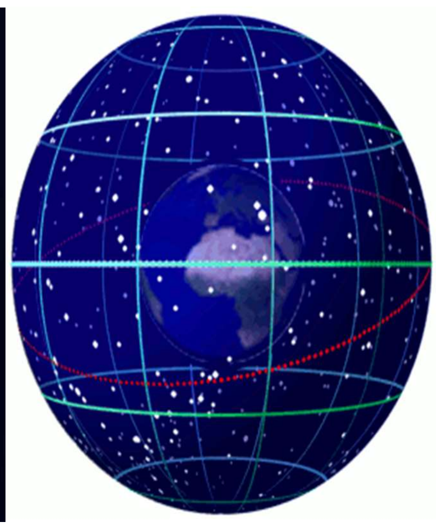

तीनपानी बाईपास रोड , ट्रॉन्सपोर्ट नगर के पीछे
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल - 263139
फोन नं .05946- 261122 , 261123
टॉल फ्री न0 18001804025
Fax No.- 05946-264232, E-mail- info@uou.ac.in
http://uou.ac.in

अध्ययन बोर्ड (फरवरी- 2020)

अध्यक्ष
कुलपति, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
हल्द्वानी

प्रोफेसर देवीप्रसाद त्रिपाठी
अध्यक्ष, कुलपति, उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय,
हरिद्वार

प्रोफेसर एच.पी. शुक्ल (संयोजक)
निदेशक, मानविकी विद्याशाखा
उ0मु0वि0वि0, हल्द्वानी

प्रोफेसर विनय कुमार पाण्डेय
अध्यक्ष, ज्योतिष विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी।

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं समन्वयक, ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी।

प्रोफेसर रामराज उपाध्याय
अध्यक्ष, पौरोहित्य विभाग, LBS, नई दिल्ली।

पाठ्यक्रम सम्पादन एवं संयोजन

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं समन्वयक, ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखन	खण्ड	इकाई संख्या
डॉ. नन्दन कुमार तिवारी असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं समन्वयक, ज्योतिष विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	**1**	**1, 2, 3, 4, 5**
डॉ. नन्दन कुमार तिवारी असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं समन्वयक, ज्योतिष विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	**2**	**1,2,3,4**

कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रकाशन वर्ष - 2020

प्रकाशक - उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी।

मुद्रक: -

ISBN No. -

नोट : - (इस पुस्तक के समस्त इकाईयों के लेखन तथा कॉपीराइट संबंधी किसी भी मामले के लिये संबंधित इकाई लेखक जिम्मेदार होगा। किसी भी विवाद का निस्तारण नैनीताल स्थित उच्च न्यायालय अथवा हल्द्वानी सत्रीय न्यायालय में किया जायेगा।)

MAJY-504 (प्रथम सेमेस्टर)

चतुर्थ पत्र - ग्रहण, वेध-यन्त्र तथा गोल परिचय – 01

अनुक्रम

प्रथम खण्ड – ग्रहण विचार	**पृष्ठ -2**
इकाई 1: ग्रहण परिचय	3-18
इकाई 2: सूर्य एवं चन्द्र ग्रहण विचार	19-33
इकाई 3: भूभा, पात (राहु) एवं ग्रास विचार	34-48
इकाई 4: शर एवं बलन	49-60
इकाई 5 : लम्बन एवं नति	61-73
द्वितीय खण्ड - चन्द्रश्रृंगोन्नति एवं उदयास्तादि विचार	**पृष्ठ-74**
इकाई 1: चन्द्रश्रृंगोन्नति विचार	75-91
इकाई 2: ग्रहोदयास्त विमर्श	92-103
इकाई 3: ग्रहयुति एवं पात विचार	104-116
इकाई 4: दृक्कर्म परिचय	117-129

एम.ए. (ज्योतिष)

(MAJY-20)

प्रथम सेमेस्टर – चतुर्थ पत्र

ग्रहण वेध-यन्त्र तथा गोल परिचय-01

कोर्स कोड - MAJY-504

खण्ड - 1

ग्रहण विचार

इकाई – 1 ग्रहण परिचय

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 ग्रहण परिचय

1.3.1 ग्रहण अवस्था, स्वरूप एवं प्रभाव

1.3.2 ग्रहण फल एवं शान्ति

1.4 सारांश

1.5 पारिभाषिक शब्दावली

1.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.8 सहायक पाठ्यसामग्री

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -504 के प्रथम खण्ड की पहली इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – ग्रहण परिचय। इससे पूर्व आपने सिद्धान्त ज्योतिष से जुड़े विभिन्न विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में 'ग्रहण' के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

'ग्रहण' सिद्धान्त ज्योतिष का महत्वपूर्ण अंग है। इसके ज्ञान से ज्योतिष शास्त्रानुरागियो के साथ-साथ आम जनमानस को भी इस शास्त्र के प्रति और विश्वास बढ़ जाता है। सामान्यतया हम जानते है कि ग्रहण एक खगोलीय घटना है, जो आकाश में ग्रह (सूर्य-चन्द्र एवं पृथ्वी) पिण्डों के परस्पर कारण से घटित होता है।

आइए इस इकाई में हम लोग 'ग्रहण' के बारे में उसकी गणितीय एवं फलित सिद्धान्तों को जानने का प्रयास करते है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- ग्रहण को परिभाषित कर सकेंगे।
- ग्रहण के अवयवों को समझा सकेंगे।
- 'ग्रहण' लगने वाले कारणों को समझ लेंगे।
- ग्रहण में कृत्याकृत्य को जान लेंगे।
- ग्रहण के गणितीय एवं फलित सिद्धान्तों को समझ लेंगे।

1.3 ग्रहण परिचय

ज्योतिष शास्त्र को उसके अध्येताओं के साथ-साथ आम जनमानस के लिए भी श्रद्धा के शिखर पर स्थापित करने में सिद्धान्त ज्योतिष के अन्तर्गत वर्णित **'ग्रहण'** का प्रमुख स्थान है। आश्चर्योत्पादित प्रतिभा के द्वारा हमारे प्राचीन आचार्यों ने जिस विधा के अन्तर्गत इस खगोलीय घटना की परिगणना की वस्तुत: वह आज भी प्रासंगिक है, इसमें कोई संशय नहीं। हमारे प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद (५/४०/५/९) में ग्रहण के विषय बताये गये है। जगत्स्रष्टा भगवान ब्रह्मा ने समस्त सृष्टि की रचना करके इस ब्रह्माण्ड को गतिमान करने के लिए भगवान सूर्य को नियुक्त किया। भगवान सूर्य के

रश्मियों से प्रकाशित समस्त ग्रह सहित ज्योतिष्मान् पिण्ड सतत् अपनी गति, स्थिति, प्रकृति तथा प्रभाव से इस समस्त ब्रह्माण्ड को आलोकित कर रहे हैं। पृथ्वी से कोशो दूर स्थित हमारे ग्रहमण्डल की स्थितियों का छोटे-छोटे यन्त्रों (लकड़ी, हाथी दाँत, बेंत सूत्रादि) की सहायता से जिस प्रकार ज्ञान किया गया, यह आज भी विज्ञान के लिए चुनौति बना हुआ है। आज के आधुनिक वैज्ञानिक भी हमारे सिद्धान्त ज्योतिष की सत्ता स्वीकार कर उसको आदि विज्ञान की संज्ञा देते हैं तथा प्रथम अन्तरिक्ष वैज्ञानिक आर्यभट्ट के नाम पर सर्व सहमति भी व्यक्त करते हैं। 'ग्रहण' एक खगोलीय घटना है जिसका प्रभाव ज्योतिष शास्त्र में वृहद् रूप में अंकित किया गया है। सामान्य तर्क के द्वारा हम ग्रहण प्रभाव को परिकल्पित करते हैं कि प्रतिदिन गर्मी के मौसम में सामान्य दिन हो रहा हो परन्तु यदि १ दिन तापमान २° हो जाये तो ऐसे प्राकृतिक प्रभाव का हमारे जीवन पर क्या प्रभाव होगा? हाँ हमलोगों में से अधिकांश को कुछ नहीं होगा परन्तु कुछ लोग बीमार पड़ जायेंगे। यदि सामान्य सी स्थिति हमारे शारीरिक स्थिति पर इतना प्रभाव डाल सकती है तो ऐसी स्थिति जिसमें हम शारीरिक एवं मानसिक दोनों प्रकार की ऊर्जा को ग्रहण करते हैं, भला कैसे प्रभावी नहीं होगी। दिन में रात्रि या उजाले में अन्धकार की प्रवृत्ति निश्चित रूप से जगत् को प्रभावित करेगी।

हमारे प्राचीन महर्षियों (ज्योतिर्विदों) ने सिद्धान्त स्कन्ध में बताया है कि सामान्यतया ग्रहण (एक ग्रह बिम्ब के द्वारा दूसरे ग्रह बिम्ब का ढका जाना) अनेकों आकाश में होते रहते हैं परन्तु रवि एवं चन्द्र का ग्रहण हमारे जगत् को विशेष रूप से प्रभावित करता है, इसलिए इनके ग्रहण की आनयन विधि तथा विविध प्रकार का क्षेत्रात्मक फल या प्रभाव भी वर्णित किया गया है। ज्योतिषशास्त्र के स्कन्धत्रय में ग्रहण की परिचर्चा है। सिद्धान्त स्कन्ध के अन्तर्गत ग्रहण गणना को बताया गया है तथा व्यक्ति पर ग्रहण के प्रभाव को होराशास्त्र में तथा सामूहिक एवं समष्टिगत प्रभाव की गणना संहिता ग्रन्थों में विस्तार से किया गया है।

आज का विकसित विज्ञान (खगोल) भी ग्रहण को चमत्कारिक घटना तथा दुष्प्रभाव युक्त स्वीकार किया है। कुछ समय पूर्व में ग्रहण काल में गृहीत ग्रह का दर्शन निषिद्ध था परन्तु कुछ दिन बाद ग्रहण को देखने के लिए चश्मा, दूरबीन या एक्सरे आदि उपकरणों का प्रयोग किया जाने लगा। इस प्रकार विज्ञान अपनी शोध की उपलब्धि के आधार पर विभिन्न तरह के शोधन- परिशोधन के साथ प्राकृतिक घटनाओं तक पहुँचने का सफल प्रयत्न करता है, परन्तु इसके गर्भ में विद्यमान गणना से परे इतने प्रश्न हैं जिनका सीधा उत्तर या परिगणना अनुपलब्ध एवं अनुत्तरित है। प्रकृति अपने अनुरूप घटनाओं को जन्म देती है तथा दार्शनिक भाषा में उसे स्वयं अपने में समेट कर उसका उपसंहार भी करती रहती है। प्रकृति को पढ़ने में जितने सहायक हमारे प्राचीन महर्षि हुए, शायद उतना सामर्थ्य

जुटाना असंभव सा प्रतीत होता है। ऐसे अनेकों प्रश्न या घटना खगोलीय अनुसन्धान के द्वारा हमारे अल्प जीवन में दिखें जिनके प्रभाव को लेकर तरह- तरह की चर्चायें संसार में होती रहीं परन्तु स्वयं उसका समाधान भी हो गया और हम देखते रह गये।

ग्रहण, ब्रह्माण्डस्थ ग्रह-नक्षत्रादि पिण्डों के परस्पर संयोग से होने वाली एक ऐसी अद्भुत एवं विस्मयकारी आकाशीय घटना है जिसके द्वारा वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक दोनों जगत् प्रभावित होते हैं। एक ओर वैज्ञानिक वर्ग जहाँ इसके द्वारा ब्रह्माण्ड की स्थिति को जानने का प्रयास करता है तो वहीं दूसरी तरफ आध्यात्मिक एवं धार्मिक जगत् से सम्बद्ध लोग इस काल के अतीव पुण्यदायक होने से चतुर्विधपुरूषार्थों के प्रत्येक अवयवों की पुष्टि हेतु वेद-विहित कर्मानुष्ठान-स्थान-दान एवं होम आदि करते हुए परा एवं अपरा विद्या के द्वारा लौकिक एवं पारलौकिक जीवन को सुखमय एवं समृद्ध बनाते हैं। सामान्यतया आकाश में विद्यमान सभी ग्रहर्क्षादि पिण्डों के ग्रहण होते हैं, परन्तु प्रत्यक्षतया भूपृष्ठ पर प्रभाव डालने एवं जन-सामान्य के द्वारा नग्न चक्षु से सरलतया दृष्ट होने के कारण सूर्य एवं चन्द्रमा का ग्रहण ही ग्रहण के रूप में जाना जाता है तथा सौरमण्डल के इस भूपृष्ठ पर विद्यमान लोगों के लिए महत्वपूर्ण होता है।

चन्द्रग्रहण पूर्णिमा तथा सूर्यग्रहण अमावस्या को होता है क्योंकि अपनी-अपनी कक्षाओं में भ्रमण करते हुए सूर्य एवं चन्द्रमा का परस्पर १८० अंश की दूरी पर होते हैं तो पूर्णिमा होती है तथा उस समय सूर्य एवं चन्द्रमा के मध्य में स्थित भूपिण्डस्थ जनों के समक्ष सूर्य किरणों के संसर्ग से प्रकाशित चन्द्रपिण्ड का उज्ज्वल भाग पूर्ण बिम्ब रूप में दिखाई पड़ता है परन्तु उक्त स्थिति में जब चन्द्रमा अपनी कक्षा में पात के आसन्न होता है तब पृथ्वी द्वारा सूर्य किरणों के अवरोध होने से जो भूमि की छाया बनती है वह भी स्वविरूद्ध दिशा में १८० अंश पर द्वितीय पात के आसन्न सूर्य एवं चन्द्र कक्षाओं से होकर ही आगे तक जाती है। अत: अपनी कक्षा में भ्रमण करता हुआ चन्द्रमा उस भूभा में प्रविष्ट होकर ग्रहण ग्रस्त हो जाता है। इसलिएइसके सैद्धान्तिक स्वरूप को प्रतिपादित करते हुए आचार्यों ने लिखा है कि सपात सूर्य का भुजांश जब १४° से न्यून होता है, तब चन्द्रग्रहण की सम्भावना होती है। जैसा कि आचार्य भास्कराचार्य जी ने सिद्धान्तशिरोमणि में कहा है –

'सपातसूर्यस्य भुजांशका यदा मनूनका: स्याद् ग्रहणस्थ सम्भव:।।'

आधुनिक वैज्ञानिकों के मत में चन्द्रमा की कक्षा सूर्य की कक्षा के अपेक्षा ५° अवनति के कारण संयोगवश पूर्णिमा काल में चन्द्रग्रहण की स्थिति उत्पन्न होती है। सूर्यग्रहण में सूर्य एवं चन्द्रमा एक कदम्बप्रोत वृत्तगत होकर अपनी-अपनी कक्षाओं में राश्यादि मान से समान होते हैं, क्योंकि **'दर्श: सूर्येन्दुसंगम:'** के अनुसार सूर्य एवं चन्द्रमा का राश्यादि मान से समान होना ही अमान्त का लक्षण

है। अत: उक्त स्थिति में सूर्य तथा पृथ्वी के मध्य चन्द्रमा की स्थिति होने से पातासन्न सूर्यबिम्ब का चन्द्रबिम्ब से अवरोध उत्पन्न होने के कारण ग्रहण की स्थिति बनती है। सूर्यग्रहण के सम्भावना काल को प्रतिपादित करते हुए आचार्य भास्कराचार्य ने लिखा है - ''पाताढयार्कभुजांशका यदि नगोनास्स्युस्तदार्कग्रह:'' अर्थात् जब सपात सूर्य का भुजांश ७° या उससे न्यून होगा तो सूर्यग्रहण की स्थिति बनेगी। वास्तविक रूप में सूर्यग्रहण काल में चन्द्रपिण्ड द्वारा सूर्य किरणों के अवरोध से जो चन्द्रमा की छाया सूर्य के विरूद्ध दिशा में पड़ती है। उसके द्वारा भूपिण्ड का ही ग्रहण होता है परन्तु उस छाया के अन्तर्गत स्थित वासियों के लिए ही सूर्य के अदृश्य होने से सूर्यग्रहण कहा जाता है। आचार्य कमलाकर भट्ट ने सूर्यग्रहण को पृथ्वी का ग्रहण कहा है। यह ग्रहण छादक द्वारा बिम्ब के अवरूद्ध होने से सार्वदेशिक नहीं होता है परन्तु चन्द्रग्रहण में छाद्य चन्द्रबिम्ब के स्वयं भूभा में प्रविष्ट हो जाने के कारण चन्द्रग्रहण एक कालावच्छेदेन सार्वदेशिक होता है।

1.3.1 ग्रहण की अवस्था, स्वरूप एवं प्रभाव -

ग्रहण की पाँच अवस्थाएँ होती है –

1. स्पर्श 2. सम्मीलन 3. मध्य 4. उन्मीलन 5. मोक्ष

ग्रहण स्वरूप –

ग्रहण के चार स्वरूप होते है – खण्ड, पूर्ण, खग्रास तथा वलय।

ग्रहण के प्रभाव को हम तीन वर्गों में विभाजित करके विवेचना कर सकते हैं -

क. व्यक्तिगत प्रभाव – ग्रहण के प्रभाव को प्राय: सभी शास्त्रकारों ने अशुभ माना है। यदि कोई भी व्यक्ति ग्रहण को देखता है तो उसके लिए शास्त्रकारों ने हितकर नहीं बताया है। प्रत्येक मनुष्य पर ग्रहण के दुष्प्रभाव को प्राचीन आचार्यों ने अपनी-अपनी अन्वेषण पद्धति से पृथक्-पृथक् परिगणित किया है। आचार्य हारीत ने बताया है कि जिस भी व्यक्ति के जन्मनक्षत्र में चन्द्र या सूर्य का ग्रहण होता है तो उसे हानि, शत्रुता तथा तिरस्कार प्राप्त होता है। आचार्य रामदैवज्ञ ने लिखा है कि जिसके जन्मनक्षत्र में ग्रहण होता है उसकी आयु में संकट उत्पन्न होता है तथा निम्नलिखित फल की प्राप्ति जन्म राशि के क्रम से प्राप्त होती है। यथा –

राशि	**फल**
जन्मराशि	पीड़ा
दूसरी	क्षति
तीसरी	धन लाभ

चौथी	शरीर पीड़ा
पॉंचवी	पुत्रादि चिन्ता
छठी	सुख
सातवीं	पत्नी मरण
आठवी	मरण
नवीं	सम्मान नाश
दसवीं	सुख
ग्यारहवीं	लाभ
बारहवीं	मृत्यु, द्रव्यनाश

यहाँ अन्त में बताया गया है कि कुछ आचार्यों के मत में यदि हम ग्रहण न देखें तो यह अशुभ फल नहीं प्राप्त होता है। पीयूषधारा टीकाकार श्री गोविन्द दैवज्ञ ने बताया है कि दैवज्ञ मनोहर नामक ग्रन्थ में भी इस प्रकार ही फल बताया गया है, परन्तु अन्त में कहा गया है कि गर्गादि आचार्यों का मानना है कि यदि ६ मास के भीतर दूसरा ग्रहण संभव हो तो पूर्वग्रहण का दूषित फल शुभफल में परिवर्तित हो जाता है। आचार्य लल्ल ने बताया है कि ग्रहण का प्रभाव व्यक्तियों पर तीन तरह का होता है। प्रथम जिस राशि में ग्रहण हो उससे ३,८,४,११ स्व राशि होने पर शुभ तथा दूसरा ५,९ स्वराशि हो तो मध्यम तथा तीसरा १,६,२,७ स्वराशि हो तो ग्रहण का दूषित फल होता है। आचार्य गर्ग ने कुछ भिन्न प्रभाव का निरूपण किया है जिसमें स्वराशि ८,११,४,३ हो तो शुभ, १२,५,९,७ हो तो मध्यम तथा ६,२,१०,१ हो तो दूषित फल बताया है। चूँकि प्रत्येक व्यक्ति की राशि अलग-अलग होती है अतएव ग्रहण काल का दूषित रश्मिजन्य प्रभाव भी हमारे उपर पृथक्-पृथक् अनुभव किया जाता है, जिसको हमारे प्राचीन महर्षियों ने अपने-अपने शोध के आधार पर व्यक्त किया है। ग्रहणग्रस्त राशियाँ या नक्षत्र प्राय: सभी आचार्यों की दृष्टि में निन्द्य हैं। परन्तु कुछ स्थानों में मतान्तर का कारण कालजन्य या स्थानजन्य अन्तर संभव हो सकता है, क्योंकि दोनों प्रकार के ग्रहणों का संकलन कर यहाँ व्यक्तिगत प्रभाव का मूल्यांकन किया गया है। जिसमें स्थान को आधार मानकर कोई विभाजन नहीं किया गया है।

2. सामूहिक प्रभाव – विशेषरूप से ग्रहण के सामुहिक का ही वर्णन प्राचीन ग्रन्थों एवं पुराणों में प्राप्त होता है। महाभारत में पाया जाता है कि –

चन्द्रसूर्यावुभौ ग्रस्तौ एकमासीं त्रयोदशीम्।

अपर्वणि ग्रहावेतावुत्पातं जनयिष्यत:।।

अर्थात् ऐसे ग्रहण काल में उत्पात अवश्य होगें। इस प्रकार के ग्रहण का आख्यान गोपथ ब्राह्मण २/३/१९ तथा शतपथ ब्राह्मण ५/३/२/२ एवं तैतरीय ब्राह्मण ४/२ में प्राप्त होता है। वराहमिहिर ने वृहत्संहिता में बताया है कि यदि एक ही मास में रवि एवं चन्द्र दोनों का ग्रहण हो तो राजा के सेना में विद्रोह तथा कोश एवं शस्त्र नाश होता है। इस प्रकार वशिष्ठ संहिता में बताया गया है कि यदि उत्तरायण में सूर्य या चन्द्र ग्रहण हो तो विप्र, सज्जन एवं राजा की हानि होती हैं। वशिष्ठ संहिता के ही ६ पर्वों के आधार पर पृथक्-पृथक् अशुभ फलों को बताया गया है। अद्भुतसागर के राहोद्भूतावर्त्त: में बताया गया है कि एक विसन्धिग्रहण या प्राकृत ग्रहण होता है जिसमें सर्वाधिक क्षति की संभावना होती है। ग्रहण के समय में उत्पात उल्कापात, दिग्दाह, भूकम्प, धूलिवर्षण आदि दिखाई दे तो पुन: ग्रहण तथा अशुभदायक माना गया है। यथा –

चन्द्रग्रहण काल में प्रबल वायु हो तो -६ मास में ग्रहण – अशुभ फल,

चन्द्रग्रहण काल में उल्कापात हो तो -१२ मास में ग्रहण – शस्य नाश,

चन्द्रग्रहण काल में धूलिवर्षण हो तो -१८ मास में ग्रहण – मृत्यु,

चन्द्रग्रहण काल में भूकम्प हो तो -२४ मास में ग्रहण – हानि,

चन्द्रग्रहण काल में अन्धकार हो तो – ३० मास में ग्रहण – राजनाश,

चन्द्रग्रहण काल में वज्रपात हो तो – २६ मास में ग्रहण – अतिवृष्टि

पूर्वोक्त सभी हो तो ६-६ अन्तर पर ग्रहण – विविध उत्पात,

अभ्यास प्रश्न - 1

निम्नलिखित प्रश्नों में सत्य / असत्य कथन का चयन कीजिये -

1. ‘ग्रहण’ होरा ज्योतिष का विषय है।
2. भूसापेक्ष चाक्षुषदृष्ट्या ग्रहण मुख्यत: दो प्रकार के होते है।
3. ग्रहण की कुल पाँच अवस्थायें होती है।
4. सपात सूर्य का भुजांश ७° या उससे न्यून हो तो चन्द्रग्रहण की स्थिति बनती है।
5. सूर्य एवं चन्द्रमा परस्पर १८० अंश की दूरी पर होते हैं तो पूर्णिमा होती है।
6. ज्योतिषशास्त्र के मुख्यत: तीन स्कन्ध हैं।
7. ‘उपराग’ ग्रहण का पर्याय है।

इस प्रकार ही ग्रहण के स्पर्श तथा मोक्षकालिक स्थितियों के द्वारा भी विविध प्रकार का फल बताया गया है। जिसके अन्तर्गत सामूहिक फल ही अधिकाधिक मात्रा में प्राप्त होते हैं। आचार्य भार्गव ने लिखा है कि दृश्य आकाश को तीन भागों में विभक्त कर और दिनमान तथा रात्रिमान के द्वारा भी विभागत्रय कर दिन या रात्रि के ग्रहण का आकाश में भाग का ज्ञान कर पृथक्-पृथक् फल बताया है। इस प्रकार वृद्धगर्ग ने ७ खण्ड आकाश का किया है और निम्नलिखित फल बताया है –

प्रथम खांश- गायों की हानि,

द्वितीय खांश – विप्रों की हानि,

तृतीय खांश – क्षत्रियों की हानि,

चतुर्थ खांश – सभी लोगों का नाश,

पंचम खांश – वैश्यों का नाश,

षष्ठ खांश – शूद्र एवं स्त्रियों का नाश,

सप्तम खांश – अन्त्यज जातियों का नाश,

वरूणादि मण्डल में ग्रहण का शुभाशुभ प्रभाव का प्रतिदान वृहत्संहिता में विस्तार से किया गया है। इस प्रकार ज्योतिषशास्त्रीय मुहूर्त्त एवं संहिता से सम्बन्धित प्राय: सभी ग्रन्थों में सामूहिक ग्रहण प्रभाव की परिचर्चा अवश्य छोटे या बड़े रूप में प्राप्त होती है।

ग. स्थानीय प्रभाव - ज्योतिषशास्त्र एक वैज्ञानिक शास्त्र है। प्रत्येक परिस्थितियों का विश्लेषण करना इसका पुनीत एवं मंगल कार्य है। काल की गणना तथा कालजन्य विकृतियों का खण्ड-खण्ड कर उसका विश्लेषण तथा दोष शमन उपाय प्रत्येक ज्योतिषशास्त्रीय ग्रन्थों में अवश्य प्राप्त होता ही है। भचक्र में गतिमान रवि-चन्द्र ग्रहण निश्चित रूप से अमावस्या तथा पूर्णिमा को ही होगा परन्तु मास का निश्चय नहीं है कि यह ग्रहण अमुक मास में ही पतित होगा ऐसी परिस्थिति में जिसकी नक्षत्र में यह ग्रहण होता है तो संहिता के परम्परा के अनुसार कूर्मविभाग द्वारा उस नक्षत्र से सम्बन्धित देश, स्थानादि का निर्धारण करते हैं तथा उस स्थान विशेष पर उस ग्रहण का प्रतिकूल प्रभाव की परिगणना करते हैं। अतएव इसे हम स्थानीय प्रभाव के अन्तर्गत परिगणित करते हैं। ग्रहण प्रभाव का निरूपण करते हुए आठवें अध्याय में वृहद्दैवज्ञरंजन में बताया है कि यदि श्रावण, कार्तिक या आश्विन मास में सूर्य-चन्द्र ग्रहण हो और गुरूदृष्ट हो तो उत्तर दिशा के राज्यों में सुख तथा सुन्दर वृष्टि एवं स्थान की वृद्धि होती है। जिस राज्य के नक्षत्र पर ग्रहण होता है उस राज्य, मित्र एवं राजा का मरण होता है। कुछ स्थानों पर जाति के आधार पर ग्रहण का प्रभाव बताया गया ह। साथ ही अद्भुतसागर के राह्वोद्भूतावर्त नामक अध्याय के अन्तर्गत वैशाखमास से प्रारम्भ कर चैत्र पर्यन्त द्वादश मासों में

ग्रहण के प्रभाव को भिन्न- भिन्न देशों, स्थानों के आधार पर वर्णित किया गया है जिसका सर्वाधिक प्रभाव वृहत्संहिता में भी प्राप्त होता है। आचार्य ने उसी ग्रन्थ में कहा है कि –

कूर्मविभागेन वदेत् पीडां देशस्य वीक्ष्य नक्षत्रम्।।

अर्थात् हमें ग्रहण के प्रभाव को कूर्मचक्र के आधार पर नक्षत्र विभाजन करके मूल्यांकन करना चाहिए। आजीविकाओं पर पड़ने वाले ग्रहण के प्रभावों का विवेचन भी आचार्य पराशर ने विस्तार से किया है जिसकी चर्चा भट्टोत्पल की टीका में तथा अद्भुतसागर में भी प्राप्त होता है। आचार्य कश्यप ने चतुर्दिक का भिन्न-भिन्न प्रभाव भी प्रतिपादित किया है कि उत्तर दिशा में ग्रहण हो तो विप्रों का पूर्व में क्षत्रियों का, दक्षिण में वैश्यों का तथा पश्चिम दिशा में ग्रहण हो तो शूद्रों को मारता है।

ग्रहण के विभिन्न स्वरूपों को आपको पूर्व में ही परिचित कराया जा चुका है अब आपके ज्ञानार्थ यहाँ छायाचित्र भी दर्शाया जा रहा है, जिससे आप भली-भॉति ग्रहण को समझ सके, और जान सके। चूँकि ग्रहण आकाशीय घटना है, अत: इसे आकाश में ही देखा जाना सम्भव है। अब आप पहले यहाँ ग्रहण को छायाचित्र में समझने का प्रयास कीजिये, पुनश्च उसके फलाफल का भी ज्ञान कीजिएगा।

ग्रहण का छायाचित्र -

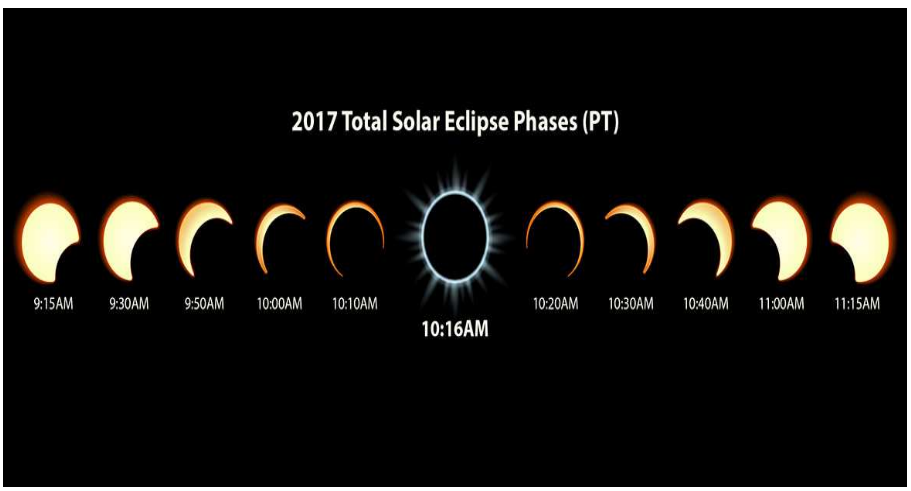

ग्रहण के विभिन्न स्थितियों को आप छायाचित्र में देखकर भी समझ सकते है। खग्रास, खण्डग्रास एवं सर्वग्रास तीनों अवस्थाओं को आप देख रहे है। उदाहरण के लिए २०१७ में लगने वाले सूर्यग्रहण को आपके ज्ञानार्थ यहाँ दिखाया गया है।

चन्द्रग्रहण के भी विभिन्न प्रकारों को आप छायाचित्र में देख सकते हैं। कैसे चन्द्रबिम्ब श्रृंगोन्नति रूप से पूर्ण बिम्ब के रूप में परिणत हो रहा है? उदाहरण के लिए आप छायाचित्र में देखकर समझ सकते है। ज्योतिष विज्ञान के अनुसार इस अद्भुत खगोलीय घटना के विश्लेषण को आधुनिक वैज्ञानिक भी सहज रूप से मानते हैं।

1.3.2 ग्रहण फल एवं शान्ति -

ग्रहण फल –

प्राय: देखा जाता है कि मुहूर्त्त प्रसंग में ग्रहण सर्वदा अशुभफलदायक ही होता है। इसीलिए ग्रहणकाल में सभी शुभकर्म वर्जित होते हैं। न केवल ग्रहण काल अपितु पूर्णग्रहण होने पर सात दिन अर्धग्रहण होने पर तीन दिन तथा पादग्रहण होने की स्थिति में एक दिन पूर्व तथा पर में शुभ कार्यों हेतु वर्जित है। इस सम्बन्ध में मतान्तर भी प्राप्त होते हैं, परन्तु सर्वाधिक आचार्यों ने उसे ही ग्रहण किया है। रामाचार्य ने लिखा है कि – ग्रहण लगे हुए ही सूर्य या चन्द्रमा के अस्त होने पर ग्रहण से तीन दिन पूर्व, ग्रस्तोदय होने की स्थिति में ग्रहण के अनन्तर तीन दिन तथा उदय एवं अस्त काल के अतिरिक्त खण्डग्रास ग्रहण में ग्रहण के पूर्व एवं बाद में तीन-तीन दिन दूषित होने से शुभकार्यों में त्याज्य होते हैं। इसके अतिरिक्त पूर्णग्रहण होने पर छ: मास, अर्द्धग्रास होने पर तीन मास तथा चतुर्थांश ग्रहण होने पर एक मास तक ग्रहण नक्षत्र शुभकार्यों में वर्जित होता है। जैसा कि आचार्य ने कहा है –

नेष्टं ग्रहर्क्षं सकलार्धपादग्रासे क्रमात्तर्कगुणेन्दुभासान्।

पूर्वं परस्तादुभयोस्त्रिघस्रग्रस्तेऽस्तगे वाय्युदितेऽर्धखण्डे।।

आचार्य कमलाकर भट्ट ने सिद्धान्ततत्वविवेक में लिखा है कि किसी भी ग्रहण में ग्रहण दिन सहित पूर्व का एक तथा बाद का तीन दिन समस्त शुभकार्यों में त्याज्य है। यथा –

प्रागेकाहस्त्रयहं पश्चाद् तद्दिनं ग्रहणस्यच।
त्यजेद्गत्यन्तराभावे सर्वग्रासेऽपि कर्मणाम्।।

समवेत फल निर्धारण के क्रम में भी मुहूर्त्त की तरह ही अशुभ फल ग्रहण से सम्बन्धित क्षेत्र पर पड़ता है। इस प्रकार के फल निर्धारण की मुख्यत: दो विधियाँ शास्त्र में दिखाई पड़ती है। १. कूर्मचक्रद्वार २. राज्यनक्षत्र द्वारा। कूर्मचक्र के द्वारा हम भारत को मध्य में रखकर समग्रविश्व तथा तदनन्तर भारत को भी नव भागों में विभक्त कर ग्रहणादि सम्बन्धित शुभाशुभ फलों को दैवज्ञों द्वारा प्रतिपादित विधि से जानने का प्रयास करते हैं।

यथा - नरक्षत्रत्रयवर्गैराग्नेयाद्यै र्व्यवस्थितैर्नवधा।
भारतवर्षे मध्यप्रगादिविभाजितदेशा:।।

कूर्म चक्र निर्धारण की विस्तृत विधि संहिता ग्रन्थों में वर्णित है। द्वितीय प्रकार से फलज्ञान क्रम में जिस राज्य के राज्याभिषेक नक्षत्र में सूर्य या चन्द्रमा का ग्रहण होता है वहाँ राज्यनाश, सुजन नाश तथा सामूहिक मरण आदि का भय व्याप्त रहता है।

ग्रहण फल -

आचार्यों ने ज्योतिषशास्त्र के प्रमुखोद्देश्य को चिरतार्थ करते हुए न केवल शुभाशुभ फलों का निर्देश किया है अपितु अशुभता निवारणार्थ शान्ति की व्यवस्था भी दी है जिसके आचरण से समस्त अशुभफल नष्ट हो जाते है। वशिष्ठ ने ''ये नरा: शान्तिवर्जिता:'' कहकर कहा कि शान्तिवर्जित लोगों को ही अशुभफल की प्राप्ति होती है। यथा –

यन्नक्षत्रगतो राहुर्ग्रसते शशिभास्करौ।
तज्जातानां भवेत्पीडा ये नरा: शान्तिवर्जिता:।।

शान्तिक्रम में भी औषधि स्नान, दान एवं जप –होमादि अनेक प्रकार की शान्ति शास्त्रों में वर्णित है। जिसके आचरण से ग्रहणजन्य दुष्ट फल होते हैं। कालतत्वविवेक के अनुसार स्वर्णनिर्मित नाग कांस्य पात्र में तिल, दक्षिणा एवं वस्त्रादि के साथ ब्राह्मण को दान करने से ग्रहणजन्य दुष्टफल नष्ट होते हैं-

''सुवर्णनिर्मितं नागं सतिलं कांस्यभाजनम्। सदक्षिणं सवस्त्रं च ब्राह्मणाय निवेदयेत्। सौवर्णं रजतं वाऽपि बिम्बं कृत्वा स्वशक्तित:। उपराग भवक्लेच्छिदे विप्राय कल्पयेत्।।''

दानमन्त्र -

तमोमय महाभीम सोमसूर्यविमर्दन हेमताराप्रदानेन मम शान्तिप्रदो भव। विधुंतद नमस्तुभ्यं सिंहिकानन्दनाच्युत दानेनानेन नागस्य रक्ष मां वेधजाद्भयात्। स्कन्ध पुराण के अनुसार – गोदानं स्वर्णदानं च भूमिदानं विशेषत:। ग्रहणे क्लेशनाशाय दैवज्ञाय निवेदयेत्।।

औषधि स्नान –

दूर्वांकुरोशीरसमाशिलाजित्सिद्धार्थसर्वौषधिदारूलध्रै:।
स्नानं विदध्याग्रहणे रविन्द्वो: पीडाहरं राशिगते शुभे चेत्।।
वस्रपट्टेलिखेन्मन्त्रं रवेराहोस्तमो विधो:।
वेदोक्तं च ततो वस्रमाछाद्य स्नानमाचरेत्।।

अर्थात् ग्रणजन्य अशुभ फल की निवृत्ति हेतु दूर्वांकुर, शिलाजित, हल्दी, सर्वौषधि, पीली सरसो, देवदारू एवं लोध आदि जल में डालकर राहु, सूर्य एवं चन्द्रमा का मन्त्र लिखे हुए वस्र से आच्छादित होकर उपर्युक्त औषधि युक्त जल से स्नान करना चाहिए। प्रकारान्तर से अन्य औषधियाँ भी स्नान हेतु वर्णित है।

पूजनादि विधि से ग्रहण शान्ति –

ब्राह्मणों द्वारा विधिवत् गणेशादि देवतओं का पूजन कर चार कलश स्थापित करें, कलशों में सप्तमृत, पंचरत्न, पंचगव्य, मोती, शंख, रोचन, पद्म, श्वेत चन्दन, तीर्थोदक, आदि का निक्षेप कर व्याहृति मन्त्र द्वारा तिलमिश्रित हवनीय द्रव्यों से १००८ बार हवन कर संकल्पपूर्वक नव मन्त्रों द्वारा कलशों को अभिमन्त्रित करके निम्नलिखित मन्त्र द्वारा स्नान करने से ग्रहणजन्य दुष्टफल नष्ट हो जाते हैं।

योसौ वज्रधरो देव आदित्यानां प्रयत्नत:। सहस्रनयन: शक्रो ग्रहपीडां व्यपोहतु।।

स्मृति निर्णय के अनुसार सूर्यग्रहण में सूर्य का जप, दान तथा चन्द्रग्रहण में चन्द्रमा एवं राहु का जप-दान अशुभ फल के निवृत्यर्थ करना चाहिए। इसके अतिरिक्त स्तोत्र पाठ तथा अन्य विधियाँ भी प्रस्तुत सन्दर्भ में वर्णित हैं।

ग्रहण में कृत्य –

ग्रहण काल वैज्ञानिक एवं धार्मिक दोनों दृष्टि से महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि विभिन्न ग्रहों के किरणों के परस्पर संयोग से जिस विशिष्ट किरणों का निर्माण होता है वे कुछ कार्यों के लिए निषिद्ध तथा कुछ कार्यों हेतु उत्तम वातावरण का निर्माण करती हैं। पुराणों में ग्रहण काल को अतीव उपयोगी बताते हुए इसमें किए गए स्नान-दान-जप होमादि का सामान्य की अपेक्षा कई गुणा फल बताया गया

है। प्रमाणानुसार अष्टम ग्रह के रूप में प्रतिष्ठित राहु का ग्रहण काल में किए जाने वाले दान या होमाहुति से भरण – पोषण भी होता है। यथा –

योऽसावसुरो राहुस्तस्य वरो ब्रह्मणाऽयमाज्ञप्त:।
आव्यायनमुपरागे दत्तहुतांशेन ते भविता।।

जिस क्षेत्र में ग्रहण होता है उस क्षेत्र में रहने वाले सभी लोगों को स्नानादि कृत्य करना चाहिए। जैसा कि वृद्ध वशिष्ठ ने कहा है –

सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहुदर्शने।
सचैलं तु भवेत्स्नानं सूतकान्नं च वर्जयेत्।।

ग्रहणकालिक दानादि का वैशिष्ट्य प्रतिपादित करते हुए दान खण्ड में लिखा गया है कि – सर्वं भूमि समं दानं सर्वे ब्रह्म समाद्विजा:। सर्वं गंगासमं तोयं ग्रहणे चन्द्रसूर्ययो:।। ग्रहणारम्भ में स्नान कर ग्रहण मध्य में जप-होमादि तथा ग्रहणान्त में मोक्ष स्नान करके दान आदि देना चाहिए। ग्रहण के मोक्ष काल में जो व्यक्ति स्नान नहीं करता है वह अगले ग्रहण तक सूतकी होता है। यथा – भार्गवार्चनदीपिकामुक्तौ यस्तु न कुर्वीत स्नानं ग्रहणसूतके। स सूतकी भोक्तावद्यावत् स्यादपरो ग्रह:।। ग्रहणकालिक यह स्नान अमन्त्रक ही होता है। जाबालि ने इस प्रसंग में कहा है कि चक्षु, शिर, कर्ण, एवं कफ रोग से ग्रसित व्यक्ति को कण्ठ से ही स्नान करना चाहिए। यहाँ ग्रहणजन्य पुण्यकाल केवल ग्रहणारम्भ से ग्रहणान्त तक ही होता है। रविवार में सूर्यग्रहण तथा सोमवार में चन्द्रग्रहण हो तो अन्य ग्रहणों की अपेक्षा इसमें स्नान-दान से अधिक पुण्य प्राप्त होता है तथा इसे चूड़ामणि योग कहते हैं।

ग्रहणकाल में वर्ज्य -

ग्रहण काल में मुख्यतया २४ कार्यों को वर्जित किया गया है । तद्यथा –

छेद्यं न पत्रं तृणदारूपुष्पं कार्यं न केशांबरपीडनं च।
दन्ता न शोध्या: पुरूषं न वाच्यं भोज्यं च वर्ज्यं मदनो न सेव्य:।।
बाह्यं न वाजी द्विरदादि किंचिद्दोह्यं न गावो महिषीसमाजम्।
यात्रां न कुर्याच्छयनं च तद्वत् ग्रहे निशाभर्तुरर्हर्पतेश्च।।
निद्रायां जायते अन्ध: विण्मूत्रे ग्रामसूकर:।
मैथुने च भवेत्कुष्ठी वधूर्वध्या द्विभोजने।।

न केवल गहणकाल अपितु ग्रहण पूर्व सूतक काल में भी उक्त कार्य वर्जित है। चन्द्रग्रहण में तीन प्रहर अर्थात् ९ घंटा तथा सूर्यग्रहण में चार प्रहर अर्थात् १२ घंटा पूर्व से सूतक काल होता है। यथा-

सूर्य ग्रहे तु नाश्नीयात् पूर्वं यामचतुष्टयम्। चन्द्रग्रहे तु यामांस्त्रीन् बालवृद्धातुरैर्विना।।

सूतक काल में बाल, वृद्ध एवं आतुर जनों हेतु छूट प्राप्त है। परन्तु ग्रहणकाल में इन्हें भी यथा सम्भव इसका त्याग कर देना चाहिए। सारांशत: ग्रहण से सम्बन्धित विस्तृत वर्णन शास्त्रों में उपलब्ध है जिनका निर्णय यथा प्रसंग सम्बन्धित शास्त्रों से करके ही कार्य-व्यवाहारादि करना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न – 2

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये –

1. आकाश के तृतीय खांश का फल ....होता है।
2. आचार्य कश्यप के अनुसार उत्तर दिशा में ग्रहण हो तो .... होती है।
3. मुहूर्त्त प्रसंग में ग्रहण सर्वदा ....होता है।
4. ग्रहण काल में मुख्यतया .... कार्य वर्जित किया गया है।
5. सर्वं भूमि समं दानं सर्वे ब्रह्म .... ।

1.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि ज्योतिष शास्त्र को उसके अध्येताओं के साथ-साथ आम जनमानस के लिए भी श्रद्धा के शिखर पर स्थापित करने में सिद्धान्त ज्योतिष के अन्तर्गत वर्णित **'ग्रहण'** का प्रमुख स्थान है। आश्चर्योत्पादित प्रतिभा के द्वारा हमारे प्राचीन आचार्यों ने जिस विधा के अन्तर्गत इस खगोलीय घटना की परिगणना की वस्तुत: वह आज भी प्रासंगिक है, इसमें संशय नहीं। हमारे प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद (५/४०/५/९) में ग्रहण के विषय बताये गये है।'ग्रहण' एक खगोलीय घटना है जिसका प्रभाव ज्योतिष शास्त्र में वृहद् रूप में अंकित किया गया है।

चन्द्रग्रहण पूर्णिमा तथा सूर्यग्रहण अमावस्या को होता है क्योंकि अपनी-अपनी कक्षाओं में भ्रमण करते हुए सूर्य एवं चन्द्रमा का परस्पर १८० अंश की दूरी पर होते हैं तो पूर्णिमा होती है तथा उस समय सूर्य एवं चन्द्रमा के मध्य में स्थित भूपिण्डस्थ जनों के समक्ष सूर्य किरणों के संसर्ग से प्रकाशित चन्द्रपिण्ड का उज्ज्वल भाग पूर्ण बिम्ब रूप में दिखाई पड़ता है परन्तु उक्त स्थिति में जब चन्द्रमा अपनी कक्षा में पात के आसन्न होता है तब पृथ्वी द्वारा सूर्य किरणों के अवरोध होने से जो भूमि की छाया बनती है वह भी स्वविरूद्ध दिशा में १८० अंश पर द्वितीय पात के आसन्न सूर्य एवं चन्द्र कक्षाओं से होकर ही आगे तक जाती है। अत: अपनी कक्षा में भ्रमण करता हुआ चन्द्रमा उस भूभा में प्रविष्ट होकर ग्रहण ग्रस्त हो जाता है। इसलिएइसके सैद्धान्तिक स्वरूप को प्रतिपादित करते हुए आचार्यों ने लिखा है कि सपात सूर्य का भुजांश जब १४° से न्यून होता है, तब चन्द्रग्रहण की

सम्भावना होती है। ग्रहण, ब्रह्माण्डस्थ ग्रह-नक्षत्रादि पिण्डों के परस्पर संयोग से होने वाली एक ऐसी अद्भुत एवं विस्मयकारी आकाशीय घटना है जिसके द्वारा वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक दोनों जगत् प्रभावित होते हैं। एक ओर वैज्ञानिक वर्ग जहाँ इसके द्वारा ब्रह्माण्ड की स्थिति को जानने का प्रयास करता है तो वहीं दूसरी तरफ आध्यात्मिक एवं धार्मिक जगत् से सम्बद्ध लोग इस काल के अतीव पुण्यदायक होने से चतुर्विधपुरूषार्थों के प्रत्येक अवयवों की पुष्टि हेतु वेद-विहित कर्मानुष्ठान-स्थान-दान एवं होम आदि करते हुए परा एवं अपरा विद्या के द्वारा लौकिक एवं पारलौकिक जीवन को सुखमय एवं समृद्ध बनाते हैं।

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

ग्रहण – गृह्णाति इति ग्रहणम्। ग्रहण एक आकाशीय घटना है, जो दो बिम्बों के कारण निश्चित कालावधि में घटित होता है। मुख्यतया दो ग्रहण होते है – चन्द्रग्रण एवं सूर्यग्रहण।

चन्द्रग्रहण – चन्द्रस्य ग्रहणं चन्द्रग्रहणं भवति। यह ग्रहण पूर्णिमा तिथि को शराभाव में होता है। जब सपात सूर्य का भुजांश १४° या उससे न्यून होता है। इसमें छाद्य चन्द्रमा तथा छादक भूभा होता है।

सूर्यग्रहण – सूर्यस्य ग्रहणं सूर्यग्रहणम्। यह ग्रहण अमावस्या को शराभाव में होता है। जब सपात सूर्य का भुजांश ७ अंश या उससे न्यून होता है। इसमें छाद्य सूर्य तथा छादक चन्द्रमा होता है।

शर – शर का अर्थ होता है दूरी। ग्रह से बिम्ब की दूरी। गणित ज्योतिष में इसका व्यापक महत्व होता है।

अमावस्या – कृष्णपक्ष की पन्द्रहवीं तिथि को अमावस्या कहते है। इसी तिथि को शराभाव में सूर्यग्रहण संभव होता है।

पूर्णिमा – शुक्लपक्ष की पन्द्रहवीं तिथि को पूर्णिमा संज्ञक कहा गया है। चन्द्रग्रहण पूर्णिमा को ही शराभाव में होता है।

उपराग – उपराग ग्रहण का पर्याय है।

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – 1 की उत्तरमाला

1. असत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. असत्य 5. सत्य 6. सत्य 7. सत्य

अभ्यास प्रश्न – 2 की उत्तरमाला

1. क्षत्रियों की हानि 2. विप्रों की हानि 3. अशुभफलदायक 4. २४ 5. समाद्विजा:

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) सिद्धान्ततत्वविवेक – मूल लेखक- कमलाकर भट्ट, टीका – कृष्णचन्द्रद्विवेदी, पर्वसम्भवाधिकार

(ख) ऋग्वेद – ५/४०/५/९

(ग) सिद्धान्तशिरोमणि – मूल लेखक – भास्कराचार्य, टीका – कृष्णचन्द्रद्विवेदी,
मध्यमाधिकार -३

(घ) वृहद्दैवज्ञरंजन – प्र. ३३ श्लोक ३

(ङ.) निर्णयसिन्धु - प्र. परि.- ग्रहण निर्णय।

1.9 सहायक पाठ्यसामग्री

वृहद्दैवज्ञरंजन – लोकमणि दहाल

निर्णयसिन्धु – शंकरबालकृष्णदीक्षित / नेमिचन्द शास्त

मुहूर्त्तचिन्तामणि – डॉ0 कमलाकान्त पाण्डेय

सूर्यसिद्धान्त - डॉ0 सत्येन्द्र मिश्र

ज्योतिर्निबन्धसर्वस्व – पं. वासुदेव सदाशिव खानखोजे

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ग्रहण को परिभाषित करते हुए विस्तृत वर्णन कीजिये।
2. ग्रहण स्वरूप का उल्लेख कीजिये।
3. प्रमुख ग्रहण का वर्णन कीजिये।
4. ग्रहण में कृत्याकृत्य पर प्रकाश डालिये।
5. ग्रहण शान्ति का वर्णन कीजिये।

इकाई - 2 सूर्य एवं चन्द्रग्रहण विचार

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 ग्रहण विचार

2.3.1 सूर्य ग्रहण विचार

2.3.2 चन्द्रग्रहण विचार

2.4 सारांश

2.5 पारिभाषिक शब्दावली

2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.8 सहायक पाठ्यसामग्री

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -504 के प्रथम खण्ड की द्वितीय इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है –सूर्य एवं चन्द्र ग्रहण विचार। इससे पूर्व आपने ग्रहण के बारे में जान लिया है। अब आप ग्रहण से जुड़े मुख्य दो ग्रहण सूर्य एवं चन्द्र ग्रहण के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

सूर्यस्य ग्रहणं सूर्यग्रहणम्। अर्थात् सूर्य का ग्रहण सूर्यग्रहण होता है। उसी प्रकार चन्द्रमा का ग्रहण चन्द्रग्रहण कहलाता है। भूसापेक्ष दृश्यानुरोधेन ये दोनों ग्रहण महत्वपूर्ण रूप में जाने जाते है।

आइए इस इकाई में हम लोग ग्रहण ज्ञान के पश्चात् 'सूर्य एवं चन्द्र ग्रहण' के बारे में जानने का प्रयास करते है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- सूर्यग्रहण को परिभाषित कर सकेंगे।
- चन्द्रग्रहण के अवयवों को समझा सकेंगे।
- 'सूर्य एवं चन्द्र ग्रहण' लगने वाले कारणों को समझ लेंगे।
- सूर्य एवं चन्द्र ग्रहण में विशेष को समझ लेंगे।

2.3 सूर्य एवं चन्द्र ग्रहण विचार

सामान्यतया किसी खगोलीय पिण्ड का पूर्ण अथवा आंशिक रूप से किसी अन्य खगोलीय पिण्ड के द्वारा ढका जाना 'ग्रहण' कहलाता है। जब कोई खगोलीय पिण्ड किसी अन्य पिण्ड के पीछे आ जाता है या किसी खगोलीय पिण्ड का प्रकाश अन्य पिण्ड के द्वारा बाधित होता है, तब ग्रहण होता है। भूसापेक्ष दृश्यानुरोधेन मुख्यतया ग्रहण के दो भेद है – सूर्यग्रहण एवं दूसरा चन्द्रग्रहण। चन्द्रमा अमावस्या को सूर्य और पृथ्वी के मध्यस्थान में प्रवेश करता है और पृथ्वी पूर्णिमा को चन्द्रमा और सूर्य के मध्यवर्तिनी होती है। पृथ्वी स्वयं पर प्रकाश एवं ईषत् दीर्घ गोलाकार है, इससे इसका जो भाग सूर्यरश्मि से प्रकाशित होता है, उसके विपरीत भाग में सूच्याकार (सूची सी आकृति) इस भूच्छाया में जब चन्द्रमा प्रवेश करता है, तब वह क्रमश: अन्धकार से आच्छादित होने लगता है। इसी को 'चन्द्रग्रहण' कहते है। ऐसी घटना केवल पूर्णिमा को ही होती है इस कारण पूर्णिमा को ही 'चन्द्रग्रहण' हो सकता है।

चन्द्रमा यदि सूर्य और पृथ्वी के मध्यवर्ती हो तो सूर्यरश्मि चन्द्र से अवरूद्ध होती है, उसी को सूर्यग्रहण कहते है। सूर्य और चन्द्रमा के संगमकाल में अर्थात् अमावस्या को सूर्यग्रहण की संभावना होती है। यदि चन्द्रकक्षा और भूकक्षा समतल स्थित होती तो प्रति पूर्णमासी को चन्द्रग्रहण एवं प्रत्येक अमावस्या को सूर्यग्रहण होता। क्योंकि उस काल में सूर्य, पृथ्वी और चन्द्रमा एक सूत्र में रहने से चन्द्र द्वारा सूर्यरश्मि बाधित वा भूच्छाया द्वारा चन्द्रबिम्ब छादित होता। किन्तु चन्द्रकक्षा और पृथ्वी कक्षा समतलस्थ नहीं है। इन दो कक्षाओं के दो बिन्दुमात्र में तिर्यग्भाव से सन्धि होती है। जिन राहु, केतु को चन्द्रपात कहते हैं, इसी पातस्थान में या तदासन्न में चन्द्रमा जब आता है, तब चन्द्रमा, सूर्य और पृथ्वी समतलस्थ होती है। अतएव प्रत्येक पूर्णमासी वा अमावस्या को चन्द्रमा अपने पातस्थ वा निकटस्थ न होने से चन्द्र या सूर्यग्रहण नहीं होता।

चन्द्रग्रहण के नियम –

क. चन्द्रकक्षास्थ पृथ्वी की छाया के केन्द्र से चन्द्रबिम्ब के केन्द्र तक जो अन्तर हैं, वह भूच्छाया और चन्द्रमा के व्यासार्द्ध के योग से न्यून न होने से ग्रहण नहीं हो सकता है।

ख. चन्द्रमा बिम्ब केन्द्र से छायाकेन्द्र पर्यन्त जो अन्तर है, वह छाया और चन्द्रमा के व्यासार्द्ध वियोग फल की अपेक्षा न्यून तथा दोनों समान न होने पर पूर्ण ग्रहण नहीं हो सकता है।

ग. पृथ्वी से चन्द्रमा जितनी दूर, भूच्छाया उसके प्राय: साढ़े तीन गुणा अधिक दूर विस्तृत एवं इस छाया के जिस प्रदेश में चन्द्रमा प्रवेश करता है, वह क्षेत्र चन्द्रव्यास से प्राय: तीन गुणा अधिक होता है। चन्द्रबिम्ब जब सम्यग् रूप से छाया में प्रविष्ट होता है, उस समय ‘पूर्णचन्द्रग्रहण’ होता है और जिस समय उसका एक अंशमात्र छाया में आच्छन्न होता है उस समय ‘आंशिकचन्द्रग्रहण’ होता है।

घ. सपात सूर्य का भुजांश १४° या उससे न्यून न हो तब तक चन्द्रग्रहण सम्भव नहीं होता।

ङ. एक स्थान पर एक वर्ष में दो बार भी चन्द्रग्रहण हो सकता है और एक बार भी नहीं हो सकता यह भी सम्भव है। परिस्थिति के अनुसार एक वर्ष में पाँच बार सूर्यग्रहण और दो चन्द्रग्रहण का होना सम्भव है।

च. चन्द्रमा अमावस्या को १७ अंश,२१ कला पातस्थान में निकटवर्ती होने पर सूर्यग्रहण, पूर्णिमा को १९ अंश ३४ कला निकट होने पर चन्द्रग्रहण हो सकता है।

छ. चन्द्रपात यदि स्थिर रहता तो प्रतिवत्सर एक ही समय में ग्रहण होता किन्तु यह पात पूर्व से पश्चिम की ओर प्राय: १८ वर्ष २२८ दिन और ६ होरा में एक बार विलोमगति से परिक्रमा

करता है। इसी कारण इतने समय के अन्त में चन्द्रपात अपने स्थान में प्रत्यागत होता है। प्राय: प्रति १८ वर्ष २२८ दिन छ: होरा में चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण प्राय: समानरूप से होते हैं।

सूर्यग्रहण के नियम –

क. सपात सूर्य का भुजांश ७° या उससे न्यून न हो तब तक सूर्यग्रहण सम्भव नहीं होता।

ख. दर्शान्त में अर्थात् अमावस्यान्त में सूर्य एवं चन्द्रमा एक ही कक्षा में होने के कारण प्रत्येक अमावस्या को सूर्यग्रहण की संभावना नहीं हो पाती। जैसा कि आचार्य भास्कराचार्य जी ने भी अपने ग्रन्थ सिद्धान्तशिरोमणि में कहा है कि –

दर्शान्तकालेऽपि समौ रविन्दु द्रष्टा नतौ येन विभिन्नकक्षौ।
क्वर्धोचिछ्रत: पश्यति नैकसूत्रं तल्लम्बनं तेन नतिं च वच्मि।।

ग. सूर्य और चन्द्रमा का दृश्यमान व्यासार्द्ध योगफल यदि सूर्य के केन्द्र से चन्द्रमा के केन्द्र की अपेक्षा न्यून होता है तो ग्रहण सम्भव होगा।

घ. सूर्य के दृश्यमान व्यासार्द्ध से चन्द्रमा का दृश्यमान व्यासार्द्ध अन्तर करने पर यदि वह सूर्य के केन्द्र से दूरता अपेक्षा न्यून हो तो ‘मध्यग्रास’ होगा।

ङ. सूर्य के दृश्यमान व्यासार्द्ध को चन्द्रमा के दृश्यमान व्यासार्द्ध से अन्तर करने पर यदि वह सूर्य के केन्द्र से दूरता अपेक्षा न्यून हो तो ‘सर्वग्रास’ ग्रहण होगा।

च. मानैक्यार्धाल्पशर समय में सूर्यग्रहण कहीं न कहीं प्रतिदिन होता है, परन्तु स्थान विशेष से वह ग्रहण कहीं दीखता है कहीं नहीं भी दीखता है।

चन्द्रमा द्वारा सूर्य की किरणें अवरूद्ध होने से सूर्यग्रहण होता है। चन्द्रमा वस्तुत: सूर्य की अपेक्षा बहुत छोटा है, परन्तु दूरता में वह सूर्य की अपेक्षा पृथ्वी के निकटस्थ होने से उसका भी बिम्ब के समान दिख पड़ना स्वाभाविक है। सौरग्रहण तीन प्रकार के होते है:- आंशिक, मध्य, सर्वग्रास, खग्रास एवं वलय ग्रहण।

खगोल शास्त्रियों ने गणित से निश्चित किया है कि 18 वर्ष 18 दिन की समयावधि में 41 सूर्य ग्रहण और 29 चन्द्रग्रहण होते हैं। एक वर्ष में 5 सूर्यग्रहण तथा 2 चन्द्रग्रहण तक हो सकते हैं। किन्तु एक वर्ष में 2 सूर्यग्रहण तो होने ही चाहिए। हाँ, यदि किसी वर्ष 2 ही ग्रहण हुए तो वो दोनों ही सूर्यग्रहण होंगे। यद्यपि वर्ष भर में 7 ग्रहण तक संभाव्य हैं, तथापि 4 से अधिक ग्रहण बहुत कम ही देखने को मिलते हैं। प्रत्येक ग्रहण 18 वर्ष 11 दिन बीत जाने पर पुन: होता है। किन्तु वह अपने पहले

के स्थान में ही हो यह निश्चित नहीं हैं, क्योंकि सम्पात बिन्दु निरन्तर चल रहे हैं।

साधारणत: सूर्यग्रहण की अपेक्षा चन्द्रग्रहण अधिक देखे जाते हैं, परन्तु सच्चाई यह है कि चन्द्र ग्रहण से कहीं अधिक सूर्यग्रहण होते हैं। 3 चन्द्रग्रहण पर 4 सूर्यग्रहण का अनुपात आता है। चन्द्र ग्रहणों के अधिक देखे जाने का कारण यह होता है कि वे पृथ्वी के आधे से अधिक भाग में दिखलाई पड़ते हैं, जब कि सूर्यग्रहण पृथ्वी के बहुत बड़े भाग में प्राय: सौ मील से कम चौड़े और दो से तीन हज़ार मील लम्बे भूभाग में दिखलाई पड़ते हैं। उदाहरण के तौर पर यदि मध्यप्रदेश में **खग्रास**, जो सम्पूर्ण सूर्य बिम्ब को ढकने वाला होता है ग्रहण हो तो गुजरात में **खण्ड सूर्य ग्रहण**, जो सूर्य बिम्ब के अंश को ही ढकता है, ही दिखलाई देगा और उत्तर भारत में वह दिखायी ही नहीं देगा।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण में सूर्य ग्रहण

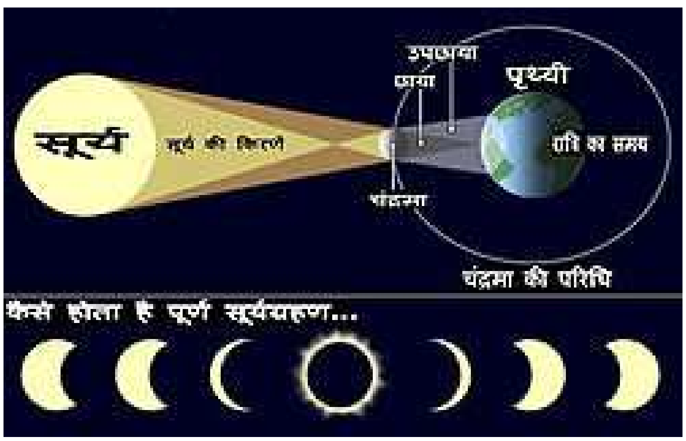

सूर्यग्रहण (Solar Eclipse)

चाहे ग्रहण का कोई आध्यात्मिक महत्त्व हो अथवा न हो किन्तु दुनिया भर के वैज्ञानिकों के लिए यह अवसर किसी उत्सव से कम नहीं होता। बड़े-बड़े शोधकर्ता एवं खगोलविद इसकी प्रतीक्षा में पलक बिछाए रहते हैं क्योंकि ग्रहण ही वह समय होता है जब ब्रह्मांड में अनेकों विलक्षण एवं अद्भुत घटनाएं घटित होती हैं जिससे कि वैज्ञानिकों को नये-नये तथ्यों पर कार्य करने का अवसर मिलता है। 1968 में **लार्कयर** नामक वैज्ञानिक ने सूर्यग्रहण के अवसर पर की गई खोज के सहारे वर्ण मंडल में हीलियम गैस की उपस्थिति का पता लगाया था। आइंस्टाइन का यह प्रतिपादन भी सूर्य ग्रहण के अवसर पर ही सही सिद्ध हो सका, जिसमें उन्होंने अन्य पिण्डों के गुरुत्वाकर्षण से प्रकाश के पड़ने की बात कही थी। चन्द्रग्रहण तो अपने संपूर्ण तत्कालीन प्रकाश क्षेत्र में देखा जा सकता है किन्तु सूर्यग्रहण अधिकतम 10 हज़ार किलोमीटर लम्बे और 250 किलोमीटर चौड़े क्षेत्र में ही देखा जा

सकता है। सम्पूर्ण सूर्यग्रहण की वास्तविक अवधि अधिक से अधिक 11 मिनट ही हो सकती है उससे अधिक नहीं। संसार के समस्त पदार्थों की संरचना सूर्य रश्मियों के माध्यम से ही संभव है। यदि सही प्रकार से सूर्य और उसकी रश्मियों के प्रभावों को समझ लिया जाए तो समस्त धरा पर आश्चर्यजनक परिणाम लाए जा सकते हैं। सूर्य की प्रत्येक रश्मि विशेष अणु का प्रतिनिधित्व करती है और जैसा कि स्पष्ट है, प्रत्येक पदार्थ किसी विशेष परमाणु से ही निर्मित होता है। अब यदि सूर्य की रश्मियों को पूंजीभूत कर एक ही विशेष बिन्दु पर केन्द्रित कर लिया जाए तो पदार्थ परिवर्तन की क्रिया भी संभव हो सकती है।

आध्यात्मिक दृष्टिकोण में सूर्य ग्रहण

आचार्य भास्कराचार्य जी ने ग्रहण के आध्यात्मिक तत्वों का विवेचन स्वग्रन्थ सिद्धान्तशिरोमणि में इस प्रकार किया है –

बहुफलं जपदानहुतादिके स्मृतिपुराणविदो प्रवदन्ति हि।
सदुपयोगिजने सचमत्कृतिर्ग्रहणमिन्द्विनयोः कथयाम्यतः।।

इस श्लोक में आचार्यवर सूर्य एवं चन्द्र ग्रहण के काल में किए गए जपदान एवं ईश्वरीय भक्ति की बात करते हुए कहते हैं कि ग्रहणकाल में जो मनुष्य उक्तानुसार (जप, तप, दान, ईश्वरीय भक्ति आदि) करता है, उसे बहुफल अर्थात् उस मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति होती है।

यह तो स्पष्ट है कि सूर्य में अद्भुत शक्तियाँ निहित हैं और ग्रहण काल में सूर्य अपनी पूर्ण क्षमता से इन शक्तियों को, इन रश्मियों को विकीर्ण करता है, जिसे ध्यान-मनन के प्रयोगों द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है, किन्तु उतना ही जितना हमारे शरीर में क्षमता है। **ग्रहण** का शाब्दिक अर्थ ही लेना, अंगीकार या स्वीकार करना है। हमारे ऋषि मुनियों ने इतना ज्ञान हमारे सम्मुख रखा है जिसका अनुमान लगाना, अर्थात ज्ञान से ज्ञान को प्राप्त करना ही जीवन की सार्थकता है। अपने भीतर के अन्धकार को मिटाने के लिए दैविक आराधना, पूजा अर्चना इत्यादि विशेष पर्वों पर करते रहने का विधान है। जैसा कि ग्रहण काल में उत्तम यौगिक क्रिया, पूजा अनुष्ठान, मन्त्र सिद्धि, तीर्थ स्नान, जप दान आदि का अपना एक विशेष महत्त्व है। इसके प्रमाण शास्त्रों में विद्यमान हैं। बहुत से बुद्धिजीवी लोग कहते हैं कि ग्रहण काल में ध्यान मनन, जाप, उपवास इत्यादि निरा अन्धविश्वास है, इन सब का कोई औचित्य नहीं।

भारतीय वैदिक काल और सूर्य ग्रहण

वैदिक काल से पूर्व भी खगोलीय संरचना पर आधारित कलैन्डर बनाने की आवश्कता अनुभव की गई। सूर्य ग्रहण, चन्द्र ग्रहण तथा उनकी पुनरावृत्ति की पूर्व सूचना ईसा से चार हज़ार वर्ष

पूर्व ही उपलब्ध थी। **ऋग्वेद** के अनुसार **अत्रिमुनि** के परिवार के पास यह ज्ञान उपलब्ध था। वेदांग ज्योतिष का महत्त्व हमारे वैदिक पूर्वजों के इस महान् ज्ञान को प्रतिबिम्बित करता है। ग्रह नक्षत्रों की दुनिया की यह घटना भारतीय मनीषियों को अत्यन्त प्राचीन काल से ज्ञात रही है। प्राचीनकाल में ही महर्षियों ने गणना कर दी थी। इस पर धार्मिक, वैदिक, वैचारिक, वैज्ञानिक विवेचन धार्मिक एवं ज्योतिषीय ग्रन्थों में होता चला आया है। महर्षि अत्रि मुनि ग्रहण के ज्ञान को देने वाले प्रथम आचार्य थे। ऋग्वेदीय प्रकाश काल अर्थात वैदिक काल से ग्रहण पर अध्ययन, मनन और परीक्षण होते चले आये हैं।

ऋग्वेद के एक मन्त्र में यह चमत्कारी वर्णन मिलता है कि "हे सूर्य ! असुर राहु ने आप पर आक्रमण कर अन्धकार से जो आपको विद्ध कर दिया, उससे मनुष्य आपके रूप को पूर्ण रूप से देख नहीं पाये और अपने अपने कार्यक्षेत्रों में हतप्रभ से हो गये। तब महर्षि अत्रि ने अपने अर्जित ज्ञान की सामर्थ्य से छाया का दूरीकरण कर सूर्य का उद्धार किया।"

मन्त्र -

स्वर्भानुर्वा आसुरः सूर्यं तमसा विध्यत्तदत्रिरपनुनोद तदत्रिरन्वपश्यत्।
स्वर्भानुर्वा आसुर आदित्यन्तमसाऽविध्यत्तं देवाः स्वरसामानो भवन्त्यादित्यस्य स्पृत्यैः॥
स्वर्भानुर्वा आसुर आदित्यन्तमसा विध्यत्तं देवा न व्यजानंस्ते-
ऽत्रिमुपाधावंस्तस्यात्रिर्भासेन तमोऽपाहन्यत्।
प्राथममपाहन् सा कृष्णाविरभवद्यद्द्वितीयं सा रजता यत्तृतीयं।
सा लोहिती यया वर्णनमभ्यतृणत्सा शुक्लासीत्।
स्वर्भानुर्वा आसुर आदित्यं तमसा विध्यत् स न व्यरोचत्तसत्रिर्भासेन।
तमोऽपाहन्स व्यरोचयत यदेतदभा अभवत्तद्भासस्य भासत्वम्॥
यं वै सूर्यं स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः। अत्रयसस्तमन्वविन्दन्ह्यन्ये अशक्नुवन्॥

अगले मन्त्र में यह आता है कि "इन्द्र ने अत्रि की सहायता से ही राहु की सीमा से सूर्य की रक्षा की थी।" इसी प्रकार ग्रहण के निरसण में समर्थ महर्षि अत्रि के तपः संधान से समुद्भुत अलौकिक प्रभावों का वर्णन वेद के अनेक मन्त्रों में प्राप्त होता है। किन्तु महर्षि अत्रि किस अद्भुत सामर्थ्य से इस आलौकिक कार्यो में दक्ष माने गये, इस विषय में दो मत हैं- **प्रथम** परम्परा प्राप्त यह मत है कि, वे इस कार्य में तपस्या के प्रभाव से समर्थ हुए और **दूसरा** यह कि, वे कोई नया यन्त्र बनाकर उसकी सहायता से ग्रहण से ग्रसित हुए सूर्य को दिखलाने में समर्थ हुए। अब आधुनिक युग है, लोगों की सोच भी आधुनिक होती जा रही है इसलिए तपस्या के प्रभाव जैसे किसी मत की अपेक्षा यहाँ हम

दूसरे मत को ही स्वीकार कर लेते हैं हैं। कुल मिलाकर इतना स्पष्ट है कि अत्यन्त प्राचीन काल में भारतीय सूर्यग्रहण के विषय में पूर्णत: जानते थे।

अभ्यास प्रश्न - 1

निम्नलिखित प्रश्नों में सत्य / असत्य कथन का चयन कीजिये -

1. किसी खगोलीय पिण्ड का पूर्ण अथवा आंशिक रूप से किसी अन्य खगोलीय पिण्ड के द्वारा ढका जाना 'ग्रहण' कहलाता है।
2. चन्द्रमा अमावस्या को सूर्य और पृथ्वी के मध्यस्थान में प्रवेश करता है
3. सपात सूर्य का भुजांश १४° या उससे न्यून न हो तब तक चन्द्रग्रहण सम्भव नहीं होता।
4. चन्द्रग्रहण में छादक भूभा होता है।
5. जो छादन करने के योग्य हो, उसे छादक बिम्ब कहते है।
6. लम्बन का संस्कार चन्द्रग्रहण में होता है।
7. दर्शान्त काल में सूर्य एवं चन्द्रमा एक ही कक्षा में होते है।

धार्मिक विवेचन

ऋषि-मुनियों ने सूर्य ग्रहण लगने के समय भोजन के लिए मना किया है, क्योंकि उनकी मान्यता थी कि ग्रहण के समय में कीटाणु बहुलता से फैल जाते हैं। खाद्य वस्तु, जल आदि में सूक्ष्म जीवाणु एकत्रित होकर उसे दूषित कर देते हैं। इसलिए ऋषियों ने पात्रों में कुश डालने को कहा है, ताकि सब कीटाणु कुश में एकत्रित हो जायें और उन्हें ग्रहण के बाद फेंका जा सके। पात्रों में अग्नि डालकर उन्हें पवित्र बनाया जाता है ताकि कीटाणु मर जायें। ग्रहण के बाद स्नान करने का विधान भी इसीलिए बनाया गया ताकि स्नान से शरीर के अंदर ऊष्मा का प्रवाह बढ़े, भीतर-बाहर के कीटाणु नष्ट हो जायें और धुल कर बह जायें।

ग्रहण के दौरान भोजन न करने के विषय में 'जीव विज्ञान' विषय के **प्रोफेसर टारिंस्टन** ने पर्याप्त अनुसंधान करके सिद्ध किया है कि सूर्य-चंद्र ग्रहण के समय मनुष्य के पेट की पाचन-शक्ति कमज़ोर हो जाती है, जिसके कारण इस समय किया गया भोजन अपच, अजीर्ण आदि शिकायतें पैदा कर शारीरिक या मानसिक हानि पहुँचा सकता है। भारतीय धर्म विज्ञानवेत्ताओं का मानना है कि सूर्य-चंद्र ग्रहण लगने से दस घंटे पूर्व से ही इसका कुप्रभाव शुरू हो जाता है। अंतरिक्षीय प्रदूषण के समय को सूतक काल कहा गया है। इसलिए सूतक काल और ग्रहण के समय में भोजन तथा पेय पदार्थों के

सेवन की मनाही की गई है। चूंकि ग्रहण से हमारी जीवन शक्ति का हास होता है और तुलसी दल में विद्युत शक्ति व प्राण शक्ति सबसे अधिक होती है, इसलिए सौर मंडलीय ग्रहण काल में ग्रहण प्रदूषण को समाप्त करने के लिए भोजन तथा पेय सामग्री में तुलसी के कुछ पत्ते डाल दिए जाते हैं जिसके प्रभाव से न केवल भोज्य पदार्थ बल्कि अन्न, आटा आदि भी प्रदूषण से मुक्त बने रह सकते हैं।

पुराणों की मान्यता के अनुसार राहु चंद्रमा को तथा केतु सूर्य को ग्रसता है। ये दोनों ही छाया की संतान हैं। चंद्रमा और सूर्य की छाया के साथ-साथ चलते हैं। चंद्र ग्रहण के समय **कफ** की प्रधानता बढ़ती है और मन की शक्ति क्षीण होती है, जबकि सूर्य ग्रहण के समय जठराग्नि, नेत्र तथा पित्त की शक्ति कमज़ोर पड़ती है। गर्भवती स्त्री को सूर्य-चंद्र ग्रहण नहीं देखने चाहिए, क्योंकि उसके दुष्प्रभाव से शिशु अंगहीन होकर विकलांग बन सकता है, गर्भपात की संभावना बढ़ जाती है। इसके लिए गर्भवती के उदर भाग में गोबर और तुलसी का लेप लगा दिया जाता है, जिससे कि राहु-केतु उसका स्पर्श न करें। ग्रहण के दौरान गर्भवती महिला को कुछ भी कैंची या चाकू से काटने को मना किया जाता है और किसी वस्त्रादि को सिलने से रोका जाता है। क्योंकि ऐसी मान्यता है कि ऐसा करने से शिशु के अंग या तो कट जाते हैं या फिर सिल जाते हैं। ग्रहण लगने के पूर्व नदी या घर में उपलब्ध जल से स्नान करके भगवान का पूजन, यज्ञ, जप करना चाहिए। भजन-कीर्तन करके ग्रहण के समय का सदुपयोग करें। ग्रहण के दौरान कोई कार्य न करें। ग्रहण के समय में मंत्रों का जाप करने से सिद्धि प्राप्त होती है। ग्रहण की अवधि में तेल लगाना, भोजन करना, जल पीना, मल-मूत्र त्याग करना, केश विन्यास बनाना, रति-क्रीड़ा करना, मंजन करना वर्जित किए गए हैं। कुछ लोग ग्रहण के दौरान भी स्नान करते हैं। ग्रहण समाप्त हो जाने पर स्नान करके ब्राह्मण को दान देने का विधान है। कहीं-कहीं वस्त्र, बर्तन धोने का भी नियम है। पुराना पानी, अन्न नष्ट कर नया भोजन पकाया जाता है और ताजा पानी भरकर पीया जाता है।

सूर्यग्रहण में ग्रहण से चार प्रहर पूर्व और चंद्र ग्रहण में तीन प्रहर पूर्व भोजन नहीं करना चाहिये। बूढे बालक और रोगी एक प्रहर पूर्व तक खा सकते हैं। ग्रहण पूरा होने पर सूर्य या चंद्र, जिसका ग्रहण हो, ग्रहण के दिन पत्ते, तिनके, लकड़ी और फूल नहीं तोड़ना चाहिए। बाल तथा वस्त्र नहीं निचोड़ने चाहिये व दंत धावन नहीं करना चाहिये। ग्रहण के समय ताला खोलना, सोना, मल मूत्र का त्याग करना, मैथुन करना और भोजन करना- ये सब कार्य वर्जित हैं। ग्रहण के समय मन से सत्पात्र को उद्देश्य करके जल में जल डाल देना चाहिए। ऐसा करने से देने वाले को उसका फल प्राप्त होता है और लेने वाले को उसका दोष भी नहीं लगता। ग्रहण के समय गायों को घास, पक्षियों को अन्न, ज़रुरतमंदों को वस्त्र दान से अनेक गुना पुण्य प्राप्त होता है। 'देवी भागवत' में आता है कि भूकंप एवं

ग्रहण के अवसर पर पृथ्वी को खोदना नहीं चाहिये।

आधुनिक विज्ञान द्वारा विश्लेषण

आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से जब सूर्य व पृथ्वी के बीच में चन्द्रमा आ जाता है तो चन्द्रमा के पीछे सूर्य का बिम्ब कुछ समय के लिए ढ़क जाता है, उसी घटना को 'सूर्यग्रहण' कहा जाता है। पृथ्वी सूरज की परिक्रमा करती है और चन्द्रमा पृथ्वी की। कभी-कभी चन्द्रमा, सूर्य और धरती के बीच आ जाता है। फिर वह सूर्य की आंशिक या समस्त प्रकाश को रोक लेता है जिससे धरती पर छाया फैल जाता है। इस घटना को 'सूर्य ग्रहण' कहा जाता है। यह घटना प्रत्येक अमावस्या को ही होती है। अक्सर चन्द्रमा, सूर्य के सिर्फ़ कुछ हिस्से को ही ढ़कता है। यह स्थिति खण्ड-ग्रहण कहलाती है। कभी-कभी ही ऐसा होता है कि चन्द्रमा, सूर्य को पूरी तरह ढँक लेता है। इसे पूर्ण-ग्रहण कहते हैं। पूर्ण-ग्रहण धरती के बहुत कम क्षेत्र में ही देखा जा सकता है। ज़्यादा से ज़्यादा दो सौ पचास (250) किलोमीटर के सम्पर्क में। इस क्षेत्र के बाहर केवल खंड-ग्रहण दिखाई देता है। पूर्ण-ग्रहण के समय चन्द्रमा को सूरज के सामने से गुजरने में दो घण्टे लगते हैं। चन्द्रमा सूरज को पूरी तरह से, ज़्यादा से ज़्यादा, सात मिनट तक ढँकता है। इन कुछ क्षणों के लिए आसमान में अंधेरा हो जाता है, या यूँ कहें कि दिन में रात हो जाती है।चन्द्रमा द्वारा सूर्य के बिम्ब के पूरे या कम भाग के ढ़के जाने की वजह से सूर्य ग्रहण तीन प्रकार के होते हैं जिन्हें पूर्ण सूर्य ग्रहण, आंशिक सूर्य ग्रहण व वलयाकार सूर्य ग्रहण कहते हैं।

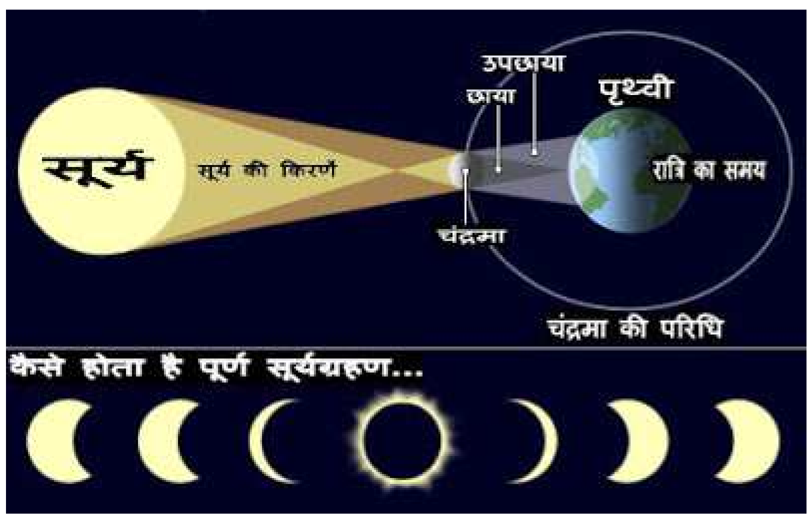

1. पूर्ण सूर्यग्रहण -

पूर्ण सूर्य ग्रहण उस समय होता है जब चन्द्रमा पृथ्वी के काफ़ी पास रहते हुए पृथ्वी और सूर्य के बीच में आ जाता है और चन्द्रमा पूरी तरह से पृथ्वी को अपने छाया क्षेत्र में ले लेता है। इसके फलस्वरूप सूर्य का प्रकाश पृथ्वी तक पहुँच नहीं पाता है और पृथ्वी पर अंधकार जैसी स्थिति

उत्पन्न हो जाती है तब पृथ्वी पर पूरा सूर्य दिखाई नहीं देता। इस प्रकार बनने वाला ग्रहण पूर्ण सूर्य ग्रहण कहलाता है।

2. आंशिक सूर्य ग्रहण -

आंशिक सूर्यग्रहण में जब चन्द्रमा सूर्य व पृथ्वी के बीच में इस प्रकार आए कि सूर्य का कुछ ही भाग पृथ्वी से दिखाई नहीं देता है अर्थात चन्दमा, सूर्य के केवल कुछ भाग को ही अपनी छाया में ले पाता है। इससे सूर्य का कुछ भाग ग्रहण ग्रास में तथा कुछ भाग ग्रहण से अप्रभावित रहता है तो पृथ्वी के उस भाग विशेष में लगा ग्रहण आंशिक सूर्य ग्रहण कहलाता है।

3. वलयाकार सूर्य ग्रहण -

वलयाकार सूर्य ग्रहण में जब चन्द्रमा पृथ्वी के काफ़ी दूर रहते हुए पृथ्वी और सूर्य के बीच में आ जाता है अर्थात चन्द्र सूर्य को इस प्रकार से ढकता है, कि सूर्य का केवल मध्य भाग ही छाया क्षेत्र में आता है और पृथ्वी से देखने पर चन्द्रमा द्वारा सूर्य पूरी तरह ढका दिखाई नहीं देता बल्कि सूर्य के बाहर का क्षेत्र प्रकाशित होने के कारण कंगन या वलय के रूप में चमकता दिखाई देता है। कंगन आकार में बने सूर्यग्रहण को ही वलयाकार सूर्य ग्रहण कहलाता है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण में सूर्य ग्रहण

चाहें ग्रहण का कोई आध्यात्मिक महत्त्व हो अथवा न हो किन्तु दुनिया भर के वैज्ञानिकों के लिए यह अवसर किसी उत्सव से कम नहीं होता। क्यों कि ग्रहण ही वह समय होता है जब ब्रह्माण्ड में अनेकों विलक्षण एवं अद्भुत घटनाएं घटित होतीं हैं जिससे कि वैज्ञानिकों को नये नये तथ्यों पर कार्य करने का अवसर मिलता है। 1968 में लार्कयर नामक वैज्ञानिक नें सूर्य ग्रहण के अवसर पर की गई खोज के सहारे वर्ण मंडल में हीलियम गैस की उपस्थिति का पता लगाया था। आईन्स्टीन का यह प्रतिपादन भी सूर्य ग्रहण के अवसर पर ही सही सिद्ध हो सका, जिसमें उन्होंने अन्य पिण्डों के गुरुत्वकर्षण से प्रकाश के पडने की बात कही थी। चन्द्रग्रहण तो अपने सम्पूर्ण तत्कालीन प्रकाश क्षेत्र में देखा जा सकता है किन्तु सूर्यग्रहण अधिकतम 10 हजार किलोमीटर लम्बे और 250 किलोमीटर चौडे क्षेत्र में ही देखा जा सकता है। सम्पूर्ण सूर्यग्रहण की वास्तविक अवधि अधिक से अधिक 11 मिनट ही हो सकती है उससे अधिक नहीं। संसार के समस्त पदार्थों की संरचना सूर्य रश्मियों के माध्यम से ही संभव है। यदि सही प्रकार से सूर्य और उसकी रश्मियों के प्रभावों को समझ लिया जाए तो समस्त धरा पर आश्चर्यजनक परिणाम लाए जा सकते हैं। सूर्य की प्रत्येक रश्मि विशेष अणु का प्रतिनिधित्व करती है और जैसा कि स्पष्ट है, प्रत्येक पदार्थ किसी विशेष परमाणु से ही निर्मित होता है। अब यदि सूर्य की रश्मियों को पूंजीभूत कर एक ही विशेष बिन्दु पर केन्द्रित कर लिया जाए तो पदार्थ परिवर्तन की क्रिया भी संभव हो सकती है।

चंद्रग्रहण (lunar eclipse)

चंद्रग्रहण उस खगोलीय स्थिति को कहते है जब चंद्रमा पृथ्वी के ठीक पीछे उसकी प्रच्छाया में आ जाता है। ऐसा तभी हो सकता है जब सूर्य, पृथ्वी और चन्द्रमा इस क्रम में लगभग एक सीधी रेखा में अवस्थित हों। इस ज्यामितीय प्रतिबंध के कारण चंद्रग्रहण केवल पूर्णिमा को घटित हो सकता है। चंद्रग्रहण का प्रकार एवं अवधि चंद्र आसंधियों के सापेक्ष चंद्रमा की स्थिति पर निर्भर करते हैं। किसी सूर्यग्रहण के विपरीत, जो कि पृथ्वी के एक अपेक्षाकृत छोटे भाग से ही दिख पाता है, चंद्रग्रहण को पृथ्वी के रात्रि पक्ष के किसी भी भाग से देखा जा सकता है। जहाँ चंद्रमा की छाया की लघुता के कारण सूर्यग्रहण किसी भी स्थान से केवल कुछ मिनटों तक ही दिखता है, वहीं चंद्रग्रहण की अवधि कुछ घंटों की होती है। इसके अतिरिक्त चंद्रग्रहण को, सूर्यग्रहण के विपरीत, आँखों के लिए बिना किसी विशेष सुरक्षा के देखा जा सकता है, क्योंकि चंद्रग्रहण की उज्ज्वलता पूर्ण चंद्र से भी कम होती है।

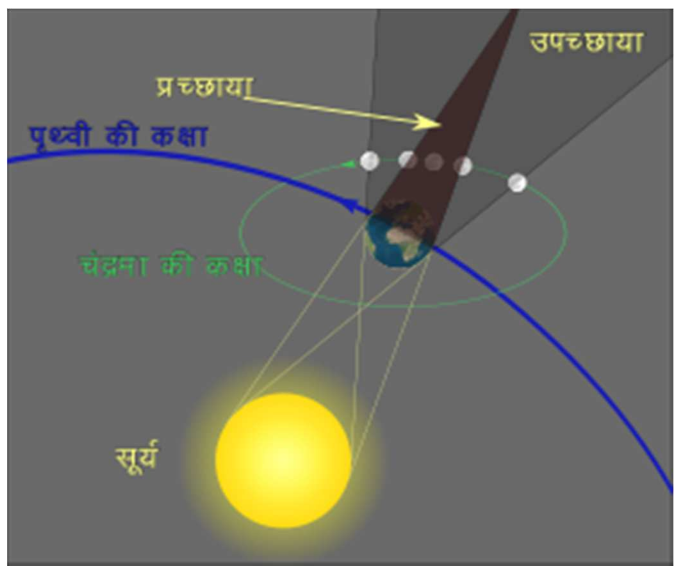

चन्द्र ग्रहण का प्रकार एवं अवधि चन्द्र आसंधियों के सापेक्ष चन्द्रमा की स्थिति पर निर्भर करते हैं। चन्द्र ग्रहण दो प्रकार का नज़र आता है -

1. पूरा चन्द्रमा ढक जाने पर 'सर्वग्रास चन्द्रग्रहण'
2. आंशिक रूप से ढक जाने पर 'खण्डग्रास (उपच्छाया) चन्द्रग्रहण'

पृथ्वी की छाया सूर्य से 6 राशि के अन्तर पर भ्रमण करती है तथा पूर्णमासी को चन्द्रमा की छाया सूर्य

से 6 राशि के अन्तर होते हुए जिस पूर्णमासी को सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों के अंश, कला एवं विकला पृथ्वी के समान होते हैं अर्थात एक सीध में होते हैं, उसी पूर्णमासी को चन्द्र ग्रहण लगता है। विश्व में किसी सूर्य ग्रहण के विपरीत, जो कि पृथ्वी के एक अपेक्षाकृत छोटे भाग से ही दिख पाता है, चन्द्र ग्रहण को पृथ्वी के रात्रि पक्ष के किसी भी भाग से देखा जा सकता है। जहाँ चन्द्रमा की छाया की लघुता के कारण सूर्य ग्रहण किसी भी स्थान से केवल कुछ मिनटों तक ही दिखता है, वहीं चन्द्र ग्रहण की अवधि कुछ घंटो की होती है। इसके अतिरिक्त चन्द्र ग्रहण को सूर्य ग्रहण के विपरीत किसी विशेष सुरक्षा उपकरण के बिना नंगी आँखों से भी देखा जा सकता है, क्योंकि चन्द्र ग्रहण की उज्ज्वलता पूर्ण चन्द्र से भी कम होती है।

अभ्यास प्रश्न – 2

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये –

1. पुराणों की मान्यता के अनुसार सूर्य का ग्रास...................करता है।
2. पूर्ण चन्द्र ढ़क जाने के पश्चात् ....ग्रहण होता है।
3. पृथ्वी और सूर्य के बीच चन्द्रमा के आने से .... ग्रहण होता है।
4. पृथ्वी की छाया सूर्य से …………….. के अन्तर पर भ्रमण करती है।
5. जब चन्द्रमा सूर्य व पृथ्वी के बीच में इस प्रकार आए कि सूर्य का कुछ ही भाग पृथ्वी से दिखाई नहीं देता है, उसे .... ग्रहण कहते है।

2.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि सामान्यतया किसी खगोलीय पिण्ड का पूर्ण अथवा आंशिक रूप से किसी अन्य खगोलीय पिण्ड के द्वारा ढका जाना 'ग्रहण' कहलाता है। जब कोई खगोलीय पिण्ड किसी अन्य पिण्ड के पीछे आ जाता है या किसी खगोलीय पिण्ड का प्रकाश अन्य पिण्ड के द्वारा बाधित होता है, तब ग्रहण होता है। भूसापेक्ष दृश्यानुरोधेन मुख्यतया ग्रहण के दो भेद है – सूर्यग्रहण एवं दूसरा चन्द्रग्रहण। चन्द्रमा अमावस्या को सूर्य और पृथ्वी के मध्यस्थान में प्रवेश करता है और पृथ्वी पूर्णिमा को चन्द्रमा और सूर्य के मध्यवर्तिनी होती है। पृथ्वी स्वयं परप्रकाश एवं ईषत् दीर्घ गोलाकार है, इससे इसका जो भाग सूर्यरश्मि से प्रकाशित होता है, उसके विपरीत भाग में सूच्याकार (सूची सी आकृति) इस भूच्छाया में

जब चन्द्रमा प्रवेश करता है, तब वह क्रमश: अन्धकार से आच्छादित होने लगता है। इसी

को 'चन्द्रग्रहण' कहते है। ऐसी घटना केवल पूर्णिमा को ही होती है इस कारण पूर्णिमा को ही चन्द्रग्रहण हो सकता है।

चन्द्रमा यदि सूर्य और पृथ्वी के मध्यवर्ती हो तो सूर्यरश्मि चन्द्र से अवरूद्ध होती है, उसी को सूर्यग्रहण कहते है। सूर्य और चन्द्रमा के संगमकाल में अर्थात् अमावस्या को सूर्यग्रहण की संभावना होती है। यदि चन्द्रकक्षा और भूकक्षा समतल स्थित होती तो प्रति पूर्णमासी को चन्द्रग्रहण एवं प्रत्येक अमावस्या को सूर्यग्रहण होता। क्योंकि उस काल में सूर्य, पृथ्वी और चन्द्रमा एक सूत्र में रहने से चन्द्र द्वारा सूर्यरश्मि बाधित वा भूच्छाया द्वारा चन्द्रबिम्ब छादित होता। किन्तु चन्द्रकक्षा और पृथ्वी कक्षा समतलस्थ नहीं है। इन दो कक्षाओं के दो बिन्दुमात्र में तिर्यग्भाव से सन्धि होती है। जिन राहु, केतु को चन्द्रपात कहते हैं, इसी पातस्थान में या तदासन्न में चन्द्रमा जब आता है, तब चन्द्रमा, सूर्य और पृथ्वी समतलस्थ होती है। अतएव प्रत्येक पूर्णमासी वा अमावस्या को चन्द्रमा अपने पातस्थ वा निकटस्थ न होने से चन्द्र या सूर्यग्रहण नहीं होता।

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

ग्रहण – गृह्णाति इति ग्रहणम्। ग्रहण एक आकाशीय घटना है, जो दो बिम्बों के कारण निश्चित कालावधि में घटित होता है। मुख्यतया दो ग्रहण होते है – चन्द्रग्रण एवं सूर्यग्रहण।

चन्द्रग्रहण – चन्द्रस्य ग्रहणं चन्द्रग्रहणं भवति। यह ग्रहण पूर्णिमा तिथि को शराभाव में होता है। जब सपात सूर्य का भुजांश १४° या उससे न्यून होता है। इसमें छाद्य चन्द्रमा तथा छादक भूभा होता है।

सूर्यग्रहण – सूर्यस्य ग्रहणं सूर्यग्रहणम्। यह ग्रहण अमावस्या को शराभाव में होता है। जब सपात सूर्य का भुजांश ७ अंश या उससे न्यून होता है। इसमें छाद्य सूर्य तथा छादक चन्द्रमा होता है।

शर – शर का अर्थ होता है दूरी। ग्रह से बिम्ब की दूरी। गणित ज्योतिष में इसका व्यापक महत्व होता है।

अमावस्या – कृष्णपक्ष की पन्द्रहवीं तिथि को अमावस्या कहते है। इसी तिथि को शराभाव में सूर्यग्रहण संभव होता है।

पूर्णिमा – शुक्लपक्ष की पन्द्रहवीं तिथि को पूर्णिमा संज्ञक कहा गया है। चन्द्रग्रहण पूर्णिमा को ही शराभाव में होता है।

उपराग – उपराग ग्रहण का पर्याय है।

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – 1 की उत्तरमाला

1. सत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. असत्य 6. असत्य 7. सत्य

अभ्यास प्रश्न – 2 की उत्तरमाला

1. केतु 2. पूर्णचन्द्रग्रहण 3. सूर्यग्रहण 4. 6 राशि 5. आंशिक सूर्यग्रहण

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) सिद्धान्ततत्वविवेक – मूल लेखक - कमलाकर भट्ट, टीका – कृष्णचन्द्रद्विवेदी, पर्वसम्भवाधिकार

(ख) ऋग्वेद – ५/४०/५/९

(ग) सिद्धान्तशिरोमणि – मूल लेखक – भास्कराचार्य, टीका – कृष्णचन्द्रद्विवेदी,
मध्यमाधिकार -३

(घ) वृहद्दैवज्ञरंजन – प्र. ३३ श्लोक ३

(ड.) निर्णयसिन्धु - प्र. परि.- ग्रहण निर्णय।

2.9 सहायक पाठ्यसामग्री

वृहद्दैवज्ञरंजन – मूल लेखक:- रामदीन दैवज्ञ, टिकाकार – मुरलीधर चतुर्वेदी

निर्णयसिन्धु – कमलाकर

मुहूर्त्तचिन्तामणि – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

सूर्यसिद्धान्त – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

सिद्धान्तशिरोमणि – डॉ0 सत्यदेव शर्मा

सिद्धान्ततत्वविवेक – आचार्य कमलाकर भट्ट

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. चन्द्रग्रहण का वर्णन कीजिये।
2. सूर्यग्रहण का विस्तृत उल्लेख कीजिये।
3. चन्द्र एवं सूर्यग्रहण सम्भवासम्भव को अपने शब्दों में लिखिये।
4. ग्रहण में शुभाशुभ कृत्य का उल्लेख कीजिये।
5. ग्रहण में धार्मिक तत्वों का विवेचन कीजिये।

इकाई - 3 भूभा, पात (राहु) एवं ग्रास विचार

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 भूभा परिचय

3.3.1 पात (राहु) विचार

3.3.2 ग्रास विचार

3.4 विभिन्न ग्रन्थों में वर्णित ग्रास विचार

3.5 सारांश

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.9 सहायक पाठ्यसामग्री

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -504 के प्रथम खण्ड की तृतीय इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – भूभा पात (राहु) एवं ग्रास विचार। इससे पूर्व आपने सूर्य एवं चन्द्र ग्रहण के बारे में अध्ययन कर लिया है। अब आप ग्रहण से सम्बन्धित भूभा पात (राहु) एवं ग्रास का अध्ययन करने जा रहे है।

सामान्यतया भूभा '**पृथ्वी की छाया**' को कहते है, और पात राहुसंज्ञक होता है। ग्रास ग्रहण का अभिन्न अंग है, जिसके बिना ग्रहण को समझा नहीं जा सकता।

आइए इस इकाई में अब हम लोग भूभा पात (राहु) एवं ग्रास के बारे में जानने का प्रयास करते है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- भूभा को समझ लेंगे।
- पात को परिभाषित कर सकेंगे।
- राहु को बता सकेंगे।
- ग्रहण में ग्रास के महत्व को समझा सकेंगे ।
- भूभा, पात एवं ग्रास की गणितीय विधा को जान लेंगे।

3.3 भूभा परिचय

'भू' अर्थात् पृथ्वी तथा 'भा' नाम छाया इस प्रकार पृथ्वी की छाया को 'भूभा' कहते है। ग्रहण में इसका ज्ञान परमावश्यक होता है। भूभा, पात एवं ग्रास का सम्बन्ध ग्रहण से है। सर्वप्रथम भूभा को यहाँ समझते है -

रविकर्ण को भूव्यास से गुणाकर भूव्यासोन रविव्यास से (भाग देने से भूकेन्द्र से भूछाया का दीर्घत्व (लम्बाई) होता है। उस दीर्घत्व में से चन्द्रकर्ण को घटाकर जो शेष रहता है उसको भूव्यास से गुणाकर दीर्घत्व से भाग देने से चन्द्रकक्षा में भूभाव्यास होता है। उसको त्रिज्या से गुणाकर चन्द्रकर्ण से भाग देने से 'भूभामान' कला होती है। पृथ्वी जब सूर्य और चन्द्रमा के बीच आ जाती है और चन्द्रमा पृथ्वी की छाया (भूभा) में होकर गुजरता है, तब चन्द्रग्रहण होता है। पृथ्वी की वह छाया

चन्द्रमण्डल को ढक लेती है, जिससे चन्द्रमा में काला मण्डल दिखलायी पड़ता है। वही 'चन्द्रग्रहण' कहा जाता है। सूर्य और चन्द्रमा के बीच से गुजरने वाली पृथ्वी की बायीं ओर आधे भाग पर रहने वाले मनुष्यों को चन्द्रग्रहण दिखलायी पड़ता है।

सूर्यबिम्ब के बहुत बड़ा होने तथा पृथ्वी के छोटे होने के कारण पृथ्वी की छाया हमारी छाया की भाँति न होकर काले ठोस शंकु के समान सूच्याकार होती है और चन्द्र कक्षा को पारकर बहुत दूर तक निकल जाती है। अर्थात् भूभा (पृथ्वी की छाया) सूच्याकार होती है। इसका वर्णन आचार्य भास्कराचार्य जी ने सिद्धान्तशिरोमणि में इस प्रकार किया है –

भानोर्बिम्बपृथुत्वादपृथुत्वात्पृथिव्या: प्रभा हि सूच्यग्रा।
दीर्घतया शक्त्किक्षामतीत्य दूरं बहिर्याता।।

आकाश में फैली हुई पृथ्वी की यह छाया (भूभा) लगभग ८,५७,००० मील लम्बी होती है। इसकी लम्बाई पृथ्वी और सूर्य के बीच की दूरी पर निर्भर होती है, अत: यह छाया घटती-बढ़ती रहती है। इसलिए यह छाया कभी ८,७१,००० मील और कभी केवल ८,४३,००० मील लम्बी होती है। शंकु सदृश इस प्रच्छाया के साथ ही शंकु के ही आकारवाली उपच्छाया भी रहती है। चन्द्रमा अपने भ्रमण पथ पर चलते हुए जब पृथ्वी की उपच्छाया में पहुँचते हैं, तब विशेष परिवर्तन होता नहीं दिखलायी पड़ता, पर ज्यों ही वे प्रच्छाया के समीप आ जाते हैं, त्यों ही उन पर ग्रहण प्रतीत होने लगता है और जब वह उनका सम्पूर्ण मण्डल प्रच्छाया के भीतर आ जाता है, तब पूर्ण चन्द्रग्रहण अथवा पूर्णमास चन्द्रग्रहण लग जाता है।

रात्रि में दिखलायी देने वाला अन्धकार पृथ्वी की छाया है। यह छाया जब चन्द्रमा पर पड़ जाती है, तब चन्द्रमा पर ग्रहण लगा कहा जाता है। चन्द्रमा पृथ्वी का उपग्रह, अत: वे पृथ्वी की परिक्रमा करते हैं। पृथ्वी जैसे सूर्य की परिक्रमा करती है, अत: पृथ्वी भी एक ग्रह है। दोनों के भ्रमण क्रम कुछ ऐसे हैं कि पूर्णिमा को पृथ्वी सूर्य और चन्द्रमा के बीच हो जाती है। उसकी छाया शंकुवत् होती हैं। जब वह छाया चन्द्रमा पर पड़ जाती है अथवा कहा जाय कि चन्द्रमा अपनी गति के कारण पृथ्वी की छाया शंकु में प्रविष्ट हो जाते हैं, तब कभी सम्पूर्ण चन्द्रमण्डल ढक जाता है और कभी उसका कुछ अंश ही ढकता है। सम्पूर्ण चन्द्र के ढकने की अवस्था में सर्वग्रास चन्द्रग्रहण और अंशत: ढकने पर खण्ड चन्द्रग्रहण होता है। पृथ्वी और चन्द्रमा के मार्ग एक सतह में नहीं है। वे एक दूसरे के साथ ५ अंश का कोण बनाते हैं,जिससे ग्रहण का अवसर प्रतिपूर्णिमान्त को नहीं होता है। एक सतह में दोनों बिम्बों का यदि भ्रमण-पथ होते तो अवश्य ही प्रति पूर्णिमा और अमावस्या को चन्द्र-सूर्यग्रहण होते। यहाँ ध्यातव्य है कि चन्द्रमा की कक्षा पृथ्वी की कक्षा से ५८ अंश के कोण पर झुकी हुई है और यह भी है

कि चन्द्रमा की पातरेखा चल है। पातरेखा की परिक्रमा का समय प्राय: १८ वर्ष ११ दिन है। इस अवधि के बाद ग्रहणों के क्रम की पुनरावृत्ति होती है।

भूभार्द्ध ज्ञान -

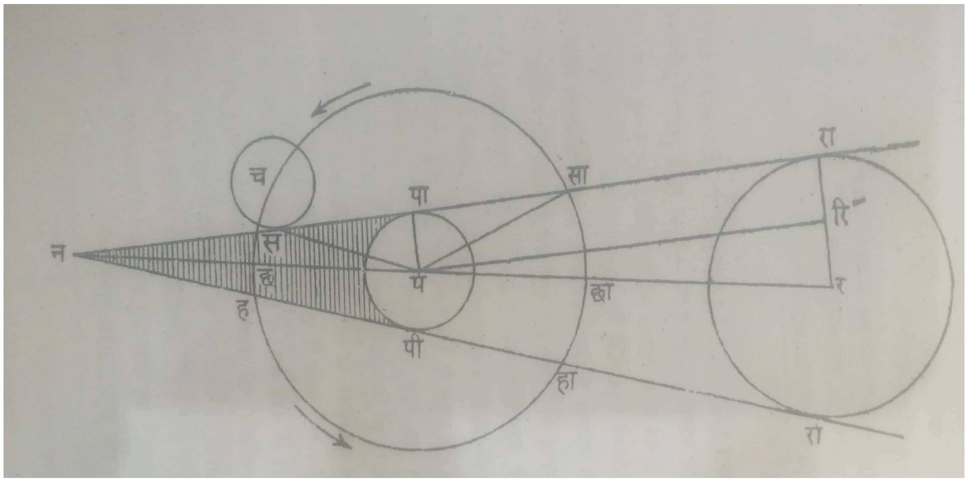

माना कि उपर के क्षेत्र में च चन्द्रमा है जो पृथ्वी की छाया में स बिन्दु पर प्रवेश कर रहा है, इसलिए यह रा पा स्पर्श रेखा को छू रहा है क्योंकि सूर्य और पृथ्वी की सामान्य स्पर्शरिखाओं रा पा और री पी से ही पृथ्वी की छाया बनती है, जिसकी नोक न है। सूर्य और पृथ्वी की त्रिज्यायें र रा और प पा स्पर्शरिखा रा पा के समकोण पर है। प रि रेखा पा रा के समानान्तर है।

पहले यह जानना आवश्यक है कि कोण स प छ किसके समान है क्योंकि यह कोण पृथ्वी के केन्द्र पर छाया की उस त्रिज्या से बनता है जो चन्द्रमा की कक्षा में है इसलिए इससे चन्द्रकक्षा में भूभा के आकार का पता चलेगा।

$$\angle \text{रि पर} = \frac{\text{रि र}}{\text{प र}} = \frac{\text{रा र} - \text{रा रि}}{\text{प र}} = \frac{\text{रा र} - \text{पा प}}{\text{प र}} = \frac{\text{रा र}}{\text{प र}} - \frac{\text{पा प}}{\text{प र}}$$

= सूर्य की त्रिज्या – सूर्य का लम्बन = त्र – ल

त्र और ल से सूर्य की त्रिज्या और लम्बन सूचित किये गये है।

$\angle$ स प छ = $\angle$ प स पा - $\angle$ प न पा

= $\angle$ प स पा - $\angle$ रि प र

क्योंकि प रि और न पा रा समान्तर है और न प र दोनों को काटता है।

यहाँ $\angle$ प स पा = प पा = चन्द्रमा का लम्बन = ला

ला को चन्द्रमा का परम लम्बन या क्षितिज लम्बन मान लेने में बहुत अन्तर नहीं पड़ेगा। इसलिए –

< स प छ = ला – (त्र – ल) = ल + ला – त्र

इससे यह सिद्ध होता है कि यदि सूर्य और चन्द्रमा के क्षितिज लम्बनों के योगफल से सूर्य की त्रिज्या का कोणात्मक मान यदि घटा दिया जाय तो जो कुछ शेष रहता है उसी के समान चन्द्रकक्षा में पृथ्वी की छाया की त्रिज्या का कोणात्मक मान होता है। इसी को भूभार्द्ध कहते है।

सूर्यसिद्धान्त में कथित भूभा के व्यास का परिमाण –

शशाङ्ककक्ष्यागुणितो भाजितो वाऽर्ककक्ष्यया।
विष्कम्भश्चन्द्रकक्ष्यायां तिथ्याप्तो मानलिप्तिका:।।
स्फुटेन्दुभुक्तिर्भूव्यासगुणिता मध्ययोद्धृता।
लब्धं सूची महीव्यासस्फुटार्कश्रवणान्तरम्।।
मध्येन्दुव्यासगुणितं मध्यार्कव्यासभाजितम्।
विशोध्य लब्धं सूच्यास्तु तमो लिप्ताश्च पूर्ववत्।।

अर्थात् चन्द्रमा की स्पष्ट गति को पृथ्वी के व्यास से गुणा करके गुणनफल को चन्द्रमा की मध्यम गति से भाग देने पर जो लब्धि आती है, उसे सूची कहते है। सूर्य के स्फुट व्यास से पृथ्वी के व्यास को घटाकर शेष को चन्द्रमा के मध्यम व्यास से गुणा करके और गुणनफल को सूर्य के मध्यम व्यास से भाग दे दो। लब्धि को सूची से घटा देने पर जो शेष आयेगा वह चन्द्रकक्षा में पृथ्वी की छाया का व्यास योजनों में आ जायेगा। चूँकि चन्द्रकक्षा का १५ योजन एक कला के समान होता है। अत: इसको १५ से भाग देने पर भूभा का व्यास कलाओं में ज्ञात हो जायेगा।

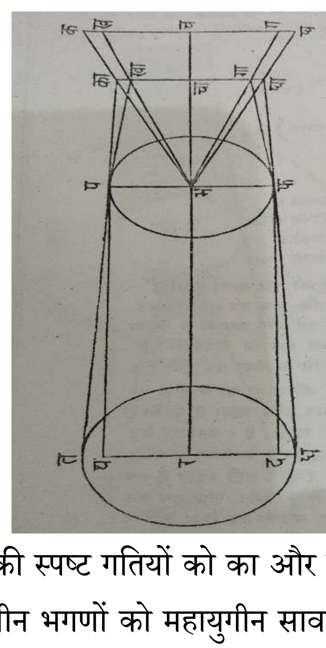

प्रस्तुत क्षेत्र में चन्द्रमा और सूर्य की स्पष्ट गतियों को का और रा अक्षरों से सूचित किया जायेगा। यदि चन्द्रमा और सूर्य के महायुगीन भगणों को महायुगीन सावन दिनों से भाग दे दिया जाय और

लब्धि की कलायें बनायी जायें तो चन्द्रमा और सूर्य की मध्यम दैनिक गतियाँ क्रमानुसार ७९० कला ५६ विकला और ५९. १३६२ होती है। पृथ्वी का व्यास १६०० योजन माना गया है (योजनानि शतान्यष्टौ भूकर्णो द्विगुणानि तु। तद्वर्गतो दशगुणात् पदं भूपरिधि र्भवेत्।।) इन मानों के आधार पर उपर्युक्त श्लोक को इस प्रकार समझा जा सकता है –

$$\text{सूची} = \frac{१६०० \times \text{चा}}{७९०.५६}$$

$$\text{सूर्य का स्फुट व्यास} = \frac{६५०० \times \text{रा}}{५९.१३६२}$$

चन्द्रकक्षा में भूभा का योजनात्मक व्यास

$$= \frac{१६०० \times \text{चा}}{७९०.५६} - \frac{६५०० \times \text{रा}}{५९.१३६२} - १६०० \times \frac{४८०}{६५००}$$

यदि इसका १५ से भाग दे दिया जाय तो चन्द्रकक्षा में भूछाया का कलात्मक व्यास

$$= १०६\frac{२}{३} \times \frac{\text{चा}}{७९०.५६} - ३२ \times \frac{\text{रा}}{५९.१३६२} + ७.८८$$

जिस समय चन्द्रमा और सूर्य की स्पष्ट गतियाँ इनकी मध्यम गतियों के समान होंगी उस समय $\frac{\text{चा}}{७९०.५६}$ और $\frac{\text{रा}}{५९.१३६२}$ एक के समान होंगे। ऐसी दशा में भूभा का कलात्मक व्यास

१०६.६७ – ३२ + ७.८८ = ८२.५५।

भूभार्द्ध वाली क्षेत्र की सहायता से पूर्व में कहा जा चुका है कि भूभार्द्ध अर्थात् चन्द्रकक्षा में पृथ्वी की छाया का अर्धव्यास ४१ कला ५७ विकला होता है, जिससे पृथ्वी की छाया का व्यास ८४ कला के लगभग आता है। इसलिए यह स्पष्ट है कि सूर्यसिद्धान्त के नियम से पृथ्वी की छाया का व्यास जितना आता है वह नवीन रीति से निकाले हुए व्यास के प्राय: समान ही होता है। यद्यपि उसके उपकरण स्थूल और अशुद्ध है। भारतीय रीति से भूभा के व्यास का जो परिमाण आता है वह तीन पदों १०६.६७,३२ और ७.८८ के योग वियोग से सिद्ध होता है।

सिद्धान्तशिरामणि में कथित भूभा व्यास –

मूल श्लोक:-

बिम्बं रवेर्द्विद्विशरर्तु संख्यानीन्दो: खनागाम्बुधि योजनानि।

भूव्यासहीनं रविबिम्बमिन्दुकर्णाहतं भास्करकर्णभक्तम्।।

भूविस्तृतिर्लब्धफलेन हीना भवेत् कुभाविस्तृतिरिन्दुमार्गे।।

अर्थात् सूर्यबिम्ब का व्यास ६५२२ योजन तथा चन्द्रबिम्ब का व्यास मान ४८० योजन होता है। भूव्यास को रवि बिम्ब व्यास में से घटाकर चन्द्र के कर्ण से गुणा करके सूर्य कर्ण से विभक्त करने से प्राप्तफल को भूव्यास में से घटाने से चन्द्रमार्ग (चन्द्रस्थान) पर कुभा (भूभा) का विस्तार (व्यास) होता है। ये योजनात्मक बिम्ब हैं। कुभा के मान को राहु का योजनात्मक मान कहा है।

इसकी उपपत्ति बतलाते हुए आचार्य का कथन है कि जिस दिन सूर्य की स्फुट गति मध्यगति तुल्य हो उस दिन सूर्योदय काल पर चक्रकला व्यासार्ध तुल्य दो यष्टि केदृ तथा दृस्प के मूल के मिलान बिन्दु दृ से ग्रह के वेध से जो केस्प का मान होता है वह रविबिम्ब कला होता है।

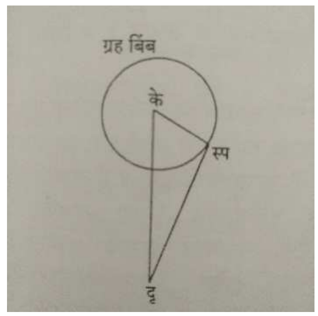

चित्र में के = ग्रहबिम्ब का केन्द्र है। दृ = दृष्टि स्थान है। दृके = दृष्टिसूत्र है। दृष्टि स्थान दृ से ग्रह बिम्ब की स्पर्श रेखा = दृस्प है। के स्प= ग्रह बिम्ब व्यासार्ध है। ग्रह बिम्ब व्यासार्ध के सम्मुख दृष्टि स्थान गत कोण = स्फुट बिम्बार्धकला < दृस्प के = ९०°। उच्च स्थान में ग्रहबिम्ब छोटा तथा नीच स्थान में बड़ा होता है तथा वहाँ गति भी क्रमश: छोटी तथा अधिक होती है। अत: बिम्बों की निष्पत्ति गति की निष्पत्ति के तुल्य होती है। रविबम्ब कला ३२।३१।३३ कलादि होता है तथा पूर्णिमा को चन्द्रमा की मध्यमगति स्पष्ट ३२।०।९ कला प्राप्त होती है। बिम्ब कला को योजनात्मक करने के लिए अनुपात किया कि यदि त्रिज्या व्यासार्ध में इतना मान का बिम्ब होता है तो पठित कर्ण योजन में कितना होगा? इस प्रकार करने से ६५२२ योजन प्राप्त होता है, यह सूर्यबिम्ब मान है तथा चन्द्रबिम्ब मान ४८० तुल्य प्राप्त होता है। सूर्य के व्यास से भूमि के व्यास अल्प होने पर ही उसकी छाया सूचिकार होगी तथा दूर तक चन्द्रमा कक्षा से आगे तक जाती है। रविकर्ण में रविभूमि व्यासान्तर योजन ४९४१ प्राप्त होते हैं तो चन्द्र कर्ण में कितने होंगे? फल भूव्यास के अपचय योजन होते है। इसमें से भूव्यास घटाने से चन्द्र कक्षा में भूभा का व्यास होता है।

3.3.1 पात (राहु) विचार –

गणित ज्योतिष के अन्तर्गत पात के सन्दर्भ में 'गोल' में यह कथन है कि –

नाडिका क्रान्तिवृत्तेत्थ योगौतु यौ।
गोलसन्धी तथा क्रान्ति पातो स्मृतौ।।

अपि च –

एवं चन्द्रस्य यौ पातौ तत्राद्यो राहुसंज्ञक:।
द्वितीय: केतु संज्ञस्तौ ग्राहकौ चन्द्रसूर्ययो:।।

अर्थात् नाड़ी-क्रान्तिवृत्त दो स्थानों पर मिलते हैं जिन्हें पात, सम्पात तथा गोलसन्धि के नामों से जानते हैं।

चन्द्रविमण्डल और क्रान्तिवृत्त के दोनों सम्पातों में प्रथम को राहु (पात) एवं द्वितीय सम्पात को केतु कहते हैं। चन्द्रग्रहण एवं सूर्यग्रहण में क्रमश: राहु और केतु कारण बनते हैं।

चन्द्रविमण्डलार्धमुत्तरदिगस्थपात: राहुसंज्ञकस्तथा दक्षिणदिगस्थपात: केतु: संज्ञकश्च।।

पर्वान्त काल में सूर्य, चन्द्रमा और पात को स्पष्ट करने की रीति –

गतैष्यपर्वनाडीनां स्ववफलेनोन संयुतौ।
समलिप्तौ भवेतां तौ पातस्तात्कालिकोऽन्यथा।।

जिस समय के सूर्य और चन्द्रमा स्पष्ट किये गये हों उस समय के पर्वान्त काल अर्थात् पूर्णमासी या अमावस्या के अन्त काल का जो अन्तर हो उतने समय की सूर्य और चन्द्रमा की स्पष्ट गतियाँ जानकर उनको सूर्य और चन्द्रमा के स्पष्ट भोगांशों से क्रमश: घटाने या जोड़ने से जो आवें उन्हीं को पर्वान्तकालिक स्पष्ट सूर्य और स्पष्ट चन्द्र समझना चाहिये। यदि उपर्युक्त समय पर्वान्त काल के पीछे हो तो घटाना चाहिये और पहले हो तो जोड़ना चाहिये।

परन्तु पात (राहु) का स्पष्ट स्थान जानने के लिए इसकी विलोम क्रिया करनी चाहिये अर्थात् यदि उपर्युक्त समय पर्वान्त काल से पीछे हो तो उतने समय की पात की गति बढ़ानी चाहिये और पहले हो तो घटानी चाहिये क्योंकि पात की गति उल्टी होती है।

सूर्यसिद्धान्त में पात के नाम से एक 'पाताधिकार' का ही उल्लेख किया गया है। वहाँ मुख्यत: वैधृति और व्यतिपात नाम के पात की चर्चा की गयी है। पातों के स्वरूप और स्वभाव का वर्णन इस प्रकार किया गया है –

तुल्यांशुजालसम्पर्कात् तयोस्तु प्रवाहाहत:।
तद्दृक्क्रोधभवो वह्निर्लोकाभावाय जायते।।
विनाशयति पातोऽस्मिन् लोकानामसकृद्यत:।
व्यतीपात: प्रसिद्धोऽयं संज्ञाभेदेन वैधृत:।।
स कृष्णो दारूणवपुर्लोहिताक्षो महोदर:।

सर्वानिष्टकरो रौद्रो भूयो भूय: प्रजायते।।

अर्थात् क्रान्तिसाम्य कालिक सूर्य और चन्द्र के किरणों के सम्पर्क से तथा परस्पर दृष्टियों के क्रोध से उत्पन्न अग्नि, जो प्रवहवायु के वेग से आहत होकर प्रज्वलित होती है, वह लोक के लिए अशुभफलदायक होती है। जब सूर्य और चन्द्रमा की क्रान्तियाँ समान होती है तब यह पातरूप अग्नि बार-बार लोक के मंगलों का नाश करती है इसलिए यह व्यतीपातसंज्ञक पात प्रसिद्ध है। यही व्यतीपातसंज्ञक अग्नि नाम भेद से वैधृतिपात संज्ञक होती है।

यह पात कृष्णवर्ण वाला, कठोर एवं भयंकर शरीरवाला, लाल नेत्रों से युक्त, विशाल उदरवाला, सबका अनिष्ट करने वाला भयानक वह (अग्निपुरूप रूपी पात) बार-बार उत्पन्न होता है। प्राय: एक मास में दो बार पात की स्थिति आती है। यह उपर वर्णित पात (राहु) से भिन्न है। नीचे दिए गए चित्र में छ प क्रान्विृत्त, च प चन्द्र कक्षा, प चन्द्रमा का पात, छ भूच्छाया (भूभा) का केन्द्र, च स्पर्श काल के समय चन्द्र का केन्द्र, चा सम्मीलन काल के समय चन्द्रमा के केन्द्र, चि उन्मीलन के समय चन्द्रकेन्द्र, ची मोक्षकाल के समय चन्द्रकेन्द्र और फ ग्रहण के मध्यकाल के समय चन्द्र केन्द्र हैं।

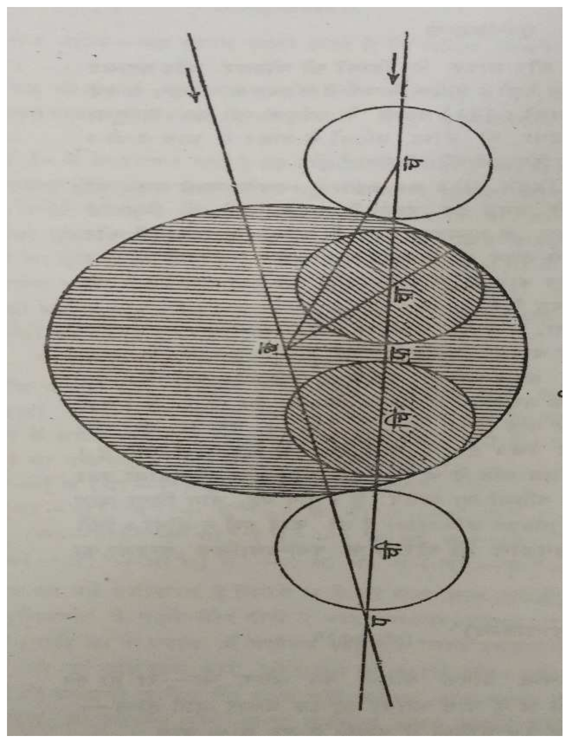

3.3.2 ग्रास विचार –

सूर्यसिद्धान्तोक्त ग्रास मान –

तात्कालिकेन्दुविक्षेपं छाद्यच्छादकमानयो:।

योगार्धात् प्रोज्झय यच्छेषं तावच्छनं तदुच्यते।।

ग्राह्यमानाधिके तस्मिन् सकलं न्यूनमन्यथा।

योगार्धादधिके न स्याद् विक्षेपे ग्राससम्भव:।।

अर्थात् छाद्य और छादक के मानैक्यार्ध (छाद्य बिम्ब और छादक बिम्ब के व्यास के योग का आधा) में तात्कालिक चन्द्रशर घटाने से शेष ग्रास प्रमाण होता है। ग्राह्यमान से ग्रासमान अधिक हो तो सम्पूर्ण ग्रहण और न्यून हो तो न्यून (खण्ड) ग्रहण होता है। मानैक्यार्ध से शर अधिक होने पर ग्रहण सम्भव नहीं होता।

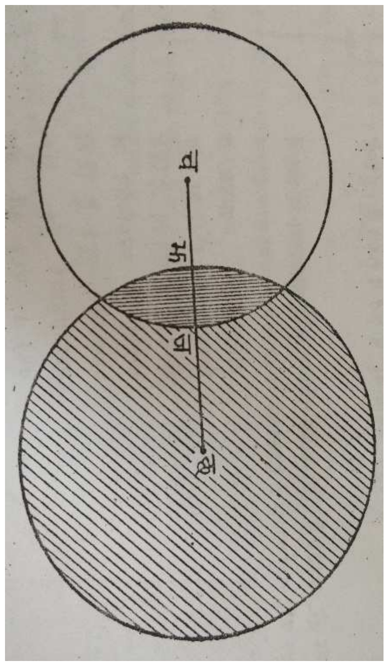

ग्रहणे छादयितुं योग्य: स: छाद्य:। छादयति य: स: छादक:। अर्थात् ग्रहण में जिसके द्वारा छादन होता है, उसे छादक बिम्ब तथा जिसका छादन होता है वह छाद्य बिम्ब कहलाता है। चन्द्रग्रहण में सूर्य से नीचे रहने के कारण चन्द्रमा उसको बादल की तरह ढक लेता है। पूर्व की ओर भ्रमण करता हुआ चन्द्रमा भूभा (भूच्छाया) में प्रवेश कर जाता है इसलिए चन्द्रमा को भूभा ढक लेती है। चन्द्रग्रहण में भूभा छादक होती है। चन्द्रमा छाद्य होता है। और सूर्यग्रहण में चन्द्रमा छादक होती है सूर्य छाद्य। सामान्यतया ऐसे समझ सकते है कि जिसका ग्रहण होता है, वह छाद्य जिसके द्वारा ग्रहण होता है उसे छादक बिम्ब कहते हैं। उपर के चित्र में चन्द्रग्रहण में छ छादक और च छाद्य है और सूर्यग्रहण में यदि छ सूर्य बिम्ब मान लिया जाय तो छ छाद्य और च छादक हो जायेगा। ग्रास का अर्थ छादक द्वारा छाद्य का जितना भाग ढक लिया जाता है, उसी से है।

अभ्यास प्रश्न -

1. निम्न में भूभा क्या है?

क. भूच्छाया ख. पृथ्वी की छाया ग. महीच्छाया घ. उपर्युक्त सभी

2. चन्द्रग्रहण में छादक बिम्ब कौन होता है?

   क. सूर्य ख. चन्द्रमा ग. पृथ्वी घ. भूभा

3. चन्द्रविमण्डल और क्रान्तिवृत्त का सम्पात क्या कहलाता है?

   क. पात (राहु) ख. केतु ग. विक्षेप घ. शर

4. ग्रासमान का सम्बन्ध किससे है?

   क. छाद्य बिम्ब से ख. छाद्य-छादक बिम्ब से ग. विक्षेप से घ. ग्रह से

5. छादयति य: स: ....।

   क. छाद्य ख. छादक: ग. विक्षेप: घ. पात

6. चन्द्रग्रहण कब होता है?

   क. अमावस्या को ख. पूर्णिमा को ग. पूर्णिमायां शराभाव में घ. कोई नहीं

3.4 अन्य ग्रन्थों में कथित ग्रासमान विचार

सिद्धान्तशिरोमणि में कथित ग्रासमान -

यच्छाद्यसंछादकमण्डलैक्यखण्डं शरोनं स्थगितप्रमाणम्।
तच्छाद्यबिम्बाधिकं यदा स्याज्ज्ञेयं च सर्वग्रहणं तदानीम्।।

अर्थात् छाद्य तथा छादक के मानैक्यार्ध में से शर को घटाने से प्राप्तफल स्थगित का प्रमाण होता है। यदि इसका मान छाद्य के बिम्ब से अधिक हो तो पूर्ण ग्रहण होता है।

इसकी उपपत्ति इस प्रकार कही गयी है कि सूर्य से छ: राशि अन्तर पर क्रान्तिवृत्त में भूच्छाया भ्रमण करती है। अत: पूर्णमास्यन्त पर भूच्छाया तथा चन्द्रमा की समान स्थिति होती है, किन्तु याम्योत्तर अन्तर शर (विक्षेप) तुल्य होता है। यह शर छाद्य तथा छादक के बिम्ब के मध्य अन्तर तुल्य होता है। यह यदि बिम्बैक्य अर्ध तुल्य हो तो इनके बिम्ब प्रान्तों का मात्र संयोग (स्पर्श) होता है। यदि शर बिंबमानैक्यार्ध से अल्प हो तो छाद्य बिम्ब छादक बिम्ब में प्रवेश करता है। अत: इस प्रकार स्थगित प्रमाण आचार्य ने कहा है। यह स्थगित मान यदि छाद्य बिम्ब से अधिक हो तो सर्व अर्थात् सम्पूर्ण ग्रहण होता है।

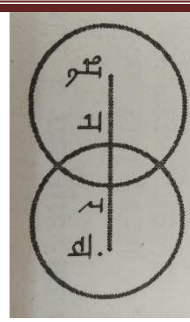

चित्र में भू = पृथ्वी की छाया का केन्द्र है। चं = चंद्रबिम्ब केन्द्र है। चं न = चन्द्रबिम्ब व्यासार्ध है। भू र = भूच्छायाबिंब व्यासार्ध है। न र = ग्रास मान है।

चित्र के अनुसार – भूर + चं न = भू र + र चं + न र

= भू चं + न र

भूभा बिम्बार्ध + चन्द्र बिम्बार्ध = चन्द्र शर + ग्रास

मानैक्यार्ध = चन्द्रशर + ग्रास

अत: मानैक्यार्ध - चन्द्र शर = ग्रास मान। स्पष्ट हुआ। चन्द्र बिम्ब अर्थात् ग्राह्य बिम्ब से ग्रास मान अधिक होने पर पूर्ण ग्रहण होगा।

ग्रहलाघव में कथित ग्रासानयन –

छादयत्यर्कमिन्दुर्विधुं भूमिभा। छादकच्छाद्यमानैक्यखण्डं कुरू।
तच्छरोनं भवेच्छन्नमेतद्यदा। ग्राह्यहीनावशिष्टं तु खच्छन्नकम्।।

सूर्यग्रहण में चन्द्रमा सूर्य को आच्छादित करता है तथा चन्द्रग्रहण में भूमि की छाया चन्द्रमा को आच्छादित करती है। छाद्य और छादक के बिम्बों का योग कर उसके आधे (मानैक्य खण्ड) में शर घटाने से शेष ग्रासमान होता है। ग्रासमान से छाद्य बिम्ब घटाने पर शेष खग्रास होता है।

उदाहरण –

कल्पना किया कि - छादक (भूभा) बिम्ब का मान = २७।२४ है, छाद्य (चन्द्रमा) बिम्ब का मान -१०।४९ है। अत: इन दोनों का योग किया तो ३८।१३ मानैक्य हुआ इसका आधा १९।६ मानैक्यार्ध या मानैक्यखण्ड कहलाता है। इसमें शर ५।३५ घटाने से १३।३१ ग्रासमान हुआ। यह छाद्य बिम्ब १०।४९ से अधिक है। अत: ग्रासमान १३।३१ से १०।४९ को घटाने से शेष २।४२ खग्रास हुआ।

इष्टग्रासानयनम्-

इष्टनाडीविहीनेन स्थित्यर्धेनार्कचन्द्रयो:।
भुक्त्यरन्तरं समाहन्यात् षष्ट्याप्ता: कोटिलिप्तिका:।।

अर्थात् इष्ट घटयादिमान को स्पर्शस्थितयर्ध घटयादि में घटाने से जो शेष रहें, उनको सूर्य-चन्द्र के गत्यन्तर से गुणाकर ६० का भाग देने पर, फल कोटिकला होती है। यहाँ ग्रहण के आरम्भ से मध्यग्रहणपर्यन्त इष्टग्रास घटिका होती है।

मानैक्यखण्ड में इष्टग्रास को घटाकर शेष के वर्ग में तात्कालिक शर का वर्ग घटाकर, शेष का वर्गमूल लेने से चन्द्रग्रहण में कोटिलिप्ता होती है। सूर्यग्रहण में इस प्रकार से प्राप्त लब्धि स्पष्ट कोटिकला होती है। इन कोटिकलाओं को ६० से गुणाकर सूर्य-चन्द्र के गत्यन्तर का भाग देने से प्राप्त घटिकादि लब्धि स्वकीय स्थित्यर्ध में घटा देने से इष्टग्रास घटिका होती है।

3.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि 'भू' अर्थात् पृथ्वी तथा 'भा' नाम छाया इस प्रकार पृथ्वी की छाया को 'भूभा' कहते है। ग्रहण में इसका ज्ञान परमावश्यक होता है। रविकर्ण को भूव्यास से गुणाकर भूव्यासोन रविव्यास से (भाग देने से भूकेन्द्र से भूछाया का दीर्घत्व (लम्बाई) होता है। उस दीर्घत्व में से चन्द्रकर्ण को घटाकर जो शेष रहता है उसको भूव्यास से गुणाकर दीर्घत्व से भाग देने से चन्द्रकक्षा में भूभाव्यास होता है। उसको त्रिज्या से गुणाकर चन्द्रकर्ण से भाग देने से 'भूभामान' कला होती है। पृथ्वी जब सूर्य और चन्द्रमा के बीच आ जाती है और चन्द्रमा पृथ्वी की छाया (भूभा) में होकर गुजरता है, तब चन्द्रग्रहण होता है। पृथ्वी की वह छाया चन्द्रमण्डल को ढक लेती है, जिससे चन्द्रमा में काला मण्डल दिखलायी पड़ता है। वही 'चन्द्रग्रहण' कहा जाता है। सूर्य और चन्द्रमा के बीच से गुजरने वाली पृथ्वी की बायीं ओर आधे भाग पर रहने वाले मनुष्यों को चन्द्रग्रहण दिखलायी पड़ता है। सूर्यबिम्ब के बहुत बड़ा होने तथा पृथ्वी के छोटे होने के कारण पृथ्वी की छाया हमारी छाया की भाँति न होकर काले ठोस शंकु के समान सूच्याकार होती है और चन्द्र कक्षा को पारकर बहुत दूर तक निकल जाती है। अर्थात् भूभा (पृथ्वी की छाया) सूच्याकार होती है। आकाश में फैली हुई पृथ्वी की यह छाया (भूभा) लगभग ८,५७,००० मील लम्बी होती है। इसकी लम्बाई पृथ्वी और सूर्य के बीच की दूरी पर निर्भर होती है, अत: यह छाया घटती-बढ़ती रहती है। इसलिए यह छाया कभी ८,७१,००० मील और कभी केवल ८,४३,००० मील लम्बी होती है। शंकु सदृश इस प्रच्छाया के साथ ही शंकु के ही आकारवाली उपच्छाया भी रहती है। चन्द्रमा अपने भ्रमण पथ पर चलते हुए जब पृथ्वी की उपच्छाया में पहुँचते हैं, तब विशेष परिवर्तन होता नहीं दिखलायी पड़ता, पर ज्यों ही वे प्रच्छाया के समीप आ जाते हैं, त्यों ही उन पर ग्रहण प्रतीत होने लगता है और जब वह उनका सम्पूर्ण मण्डल प्रच्छाया के भीतर आ जाता है, तब पूर्ण चन्द्रग्रहण अथवा पूर्णमास चन्द्रग्रहण लग जाता है। अर्थात् नाड़ी-क्रान्तिवृत्त दो स्थानों पर मिलते हैं जिन्हें पात, सम्पात तथा

गोलसन्धि के नामों से जानते हैं। चन्द्रविमण्डल और क्रान्तिवृत्त के दोनों सम्पातों में प्रथम को राहु (पात) एवं द्वितीय सम्पात को केतु कहते हैं। चन्द्रग्रहण एवं सूर्यग्रहण में क्रमश: राहु और केतु कारण बनते हैं। छाद्य और छादक के मानैक्यार्ध (छाद्य बिम्ब और छादक बिम्ब के व्यास के योग का आधा) में तात्कालिक चन्द्रशर घटाने से शेष ग्रास प्रमाण होता है। ग्राह्यमान से ग्रासमान अधिक हो तो सम्पूर्ण ग्रहण और न्यून हो तो न्यून (खण्ड) ग्रहण होता है। मानैक्यार्ध से शर अधिक होने पर ग्रहण सम्भव नहीं होता।

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

भूभा – भू का अर्थ पृथ्वी और भा का अर्थ छाया होता है। इस प्रकार भूभा का अर्थ भूमि की छाया हुआ।

चन्द्रग्रहण – चन्द्रस्य ग्रहणं चन्द्रग्रहणं भवति। यह ग्रहण पूर्णिमा तिथि को शराभाव में होता है। जब सपात सूर्य का भुजांश १४° या उससे न्यून होता है। इसमें छाद्य चन्द्रमा तथा छादक भूभा होता है।

सूर्यग्रहण – सूर्यस्य ग्रहणं सूर्यग्रहणम्। यह ग्रहण अमावस्या को शराभाव में होता है। जब सपात सूर्य का भुजांश ७ अंश या उससे न्यून होता है। इसमें छाद्य सूर्य तथा छादक चन्द्रमा होता है।

पात – चन्द्रविमण्डल और क्रान्तिवृत्त का सम्पात दो स्थानों पर होता है। प्रथम सम्पात को पात (राहु) एवं द्वितीय सम्पात को केतु कहते है।

ग्रास – ग्रास से तात्पर्य छादक बिम्ब द्वारा छाद्य बिम्ब को ढकने से है। ग्रहणकाल में जितना भाग ढकता है, उतना ही ग्रासमान माना जाता है। यह सामान्य बात है। विशेषत: सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से छाद्य और छादक के मानैक्यार्ध (छाद्य बिम्ब और छादक बिम्ब के व्यास के योग का आधा) में तात्कालिक चन्द्रशर घटाने से शेष ग्रास प्रमाण होता है

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – की उत्तरमाला

1. घ 2. घ 3. क 4. ख 5. ख 6. ग

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) सिद्धान्तशिरोमणि – मूल लेखक – भास्कराचार्य, टीका – कृष्णचन्द्रद्विवेदी।

(ख) सूर्यसिद्धान्त – टिककार – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय।

(ग) सूर्यसिद्धान्त – टिकाकार – महावीरप्रसाद श्रीवास्तव

(घ) ग्रहलाघवम् – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

(ड.) ग्रहलाघवम् - केदारदत्त जोशी

3.9 सहायक पाठ्यसामग्री

सूर्यसिद्धान्त – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

सिद्धान्तशिरोमणि – डॉ0 सत्यदेव शर्मा

ग्रहलाघवम् – टिकाकार- प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

ग्रहलाघवम् – केदारदत्त जोशी

सिद्धान्ततत्वविवेक – मूल लेखक – कमलाकर भट्ट, टिका – कृष्णचन्द्रद्विवेदी।

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भूभा से आप क्या समझते है।
2. भूभा साधन कीजिये।
3. चन्द्रग्रहण में पात (राहु) क्या है। लिखिये।
4. विभिन्न सिद्धान्त ग्रन्थों में वर्णित ग्रास का उल्लेख कीजिये।
5. सिद्धान्तशिरोमणि एवं सूर्यसिद्धान्त के अनुसार भूभा का वर्णन कीजिये।
6. ग्रहण में 'भूभा' की क्या भूमिका है।
7. ग्रहण में पात एवं ग्रास का महत्व पर प्रकाश डालिये।

इकाई - 4 शर एवं वलन

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 शर एवं बलन परिचय

4.3.1 शर एवं बलन का गणितीय पक्ष

4.4 सारांश

4.5 पारिभाषिक शब्दावली

4.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.8 सहायक पाठ्यसामग्री

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -504 के प्रथम खण्ड की चतुर्थ इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है– शर एवं बलन। इससे पूर्व आपने भूभा, पात, एवं ग्रास से सम्बन्धित विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप ग्रहण से जुड़े कुछ और महत्वपूर्ण विषय शर एवं बलन के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

शर का शाब्दिक अर्थ होता है – दूरी। इसे विक्षेप भी कहा जाता है। वलतीति वलनम्। सूर्य एवं चन्द्रग्रहण में ये दोनों मुख्य तत्व माने जाते है।

आइए इस इकाई में अब हम लोग सूर्य एवं चन्द्र ग्रहण से जुड़ी महत्वपूर्ण तत्व शर एवं बलन के बारे में जानने का प्रयास करते है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- शर को परिभाषित कर सकेंगे।
- बलन को समझा सकेंगे।
- ग्रहण में शर एवं बलन के उपयोगिता को समझ लेंगे।
- शर एवं बलन संस्कार से परिचित हो जायेंगे।
- ग्रहण में शर एवं बलन के महत्व को समझा सकेंगे।।

4.3 शर एवं बलन परिचय

गणित ज्योतिष में ग्रहण के अन्तर्गत शर एवं बलन का अध्ययन किया जाता है। सामन्यतया शर का अर्थ होता है – दूरी या अन्तर। इसी को विक्षेप भी कहते है। ग्रहण के अन्तर्गत शर एवं बलन का आवश्यक है। गोलीय रीति के अनुसार कदम्बप्रोत्तवृत्त में बिम्ब से ग्रहस्थान तक की दूरी (अन्तर) को मध्यम शर कहते है। स्थानीय बिम्बीयाहोरात्रवृत्त के अन्तर (ध्रुवप्रोतवृत्त) में को स्पष्ट शर कहते हैं। ग्रहबिम्बोपरिगत कदम्बप्रोतवृत्त क्रान्तिवृत्त में जहाँ लगता है, उसका नाम ग्रहस्थान है। यथा –

ग्रहबिम्बकदम्बर्क्षगतं वृत्तं भमण्डले।
यत्र बिन्दौ युतं तत्र तद्ग्रहस्थानमुच्यते।।
बिम्बस्थानान्तरं तत्र मण्डले मध्यम: शर:।
स्थानबिम्बद्युरात्रात्रान्तध्रुर्वप्रोते स्फुट: शर:।।

बलनम् - बलतीतिबलनम्। बलनं त्रिविधम्। ग्रहक्षितिजे नाड़ीक्रान्तिवृत्तयोरन्तरमायनबलनम्। तत्रैव ग्रहक्षितिजे नाड़ीपूर्वापरवृत्तयोरन्तरमाक्षबलनम्। अनयोसंस्कारेण स्फुटबलनं जायते। अर्थात् ग्रहक्षितिजे पूर्वापरक्रान्तिवृत्तान्तस्पष्टबलनम्।।

जिस स्थान से जो ९० अंश की त्रिज्या से वृत्त बनता है, उसे तत्सम्बन्धित क्षितिजवृत्त कहते हैं। जैसे ग्रहस्थान से ९० अंश की त्रिज्या द्वारा निर्मित वृत् को ग्रहक्षितिज वृत्त कहेंगे।

ग्रहक्षितिज वृत्त में ग्रहगतकदम्बप्रोत वृत्त और ध्रुवप्रोत वृत्त के अन्तर को तथा क्रान्तिवृत्त और नाड़ीवृत्त के अन्तर को आयनबलन कहते हैं। इसी प्रकार ग्रहक्षितिज में ही नाड़ी और पूर्वापरवृत्त के अन्तर को एवं ग्रहगतध्रुवप्रोतवृत्त और समप्रोतवृत्त के अन्तर को आक्षबलन कहते हैं। तथा पूर्वापरवृत्त और नाड़ीवृत्त के अन्तर को अथवा ग्रहगतसमप्रोतवृत्त और कदम्ब प्रोतवृत्त के अन्तर को स्पष्टबलन कहते हैं। इस तरह बलन तीन प्रकार का होता है।

मूल श्लोक -

यस्मात् खांकैस्तु यद् वृत्तं तस्य तत् क्षितिजं स्मृतम्।
ग्रहात् खांकाशकैर्यद्वद् ग्रहक्षितिजमुच्यते।।
आयनं बलनं ज्ञेयं ग्रहक्षितिजेऽन्तरम्।
ग्रहोपरि ध्रुवप्रोत-कदम्बप्रोतवृत्तयो:।।
नाडी-भवृत्तयोरेवमन्तरं तावदेव हि।
अक्षजं बलनं तद्वन नाडिका –समवृत्तयो:।।
अन्तरं तु ग्रहोत्पन्नक्षितिजे वा ग्रहोपरि।
समप्रोतध्रुवप्रोत-वृत्तयोरन्तरं च तत्।।
स्पष्टं तत्रान्तरं ज्ञेयं पूर्वापर-भवृत्तयो:।
ग्रहोरपरि समप्रोत कदम्ब प्रोतयोस्तथा।।

सूत्र - आयनबलन ± आक्षबलन = स्पष्टबलन।

4.3.1 शर एवं बलन का गणितीय पक्ष

चन्द्र (विक्षेप) शरानयन -

सपाततात्कालिकचन्द्रदोर्ज्या खभै: हता व्यादलेन भक्ता।
सपातशीतद्युतिगोलदिक् स्याद्विक्षेप: इन्दो: स च बाणसंज्ञ:।।

अर्थात् जिस समय पर विक्षेप ज्ञात करना हो उस समय तात्कालिक चन्द्र तथा पात का योग करे। चन्द्रग्रहण के समय भी समकल काल पर चन्द्रमा तथा तात्कालिक पात का योग करना चाहिए। उसकी ज्या को 270 से गुणा करके त्रिज्या से विभक्त करने प्राप्तफल कलात्मक चन्द्र विक्षेप होता है जिसकी बाण संज्ञा होती है। यदि सपात चन्द्र छः राषि से अल्प हो तो इस विक्षेप कला की दिषा उत्तर होती है तथा अधिक हो तो विक्षेप कक्षा की दिषा दक्षिण होती है।

उपपत्ति - चन्द्रमा अपने विमण्डल में भ्रमण करता है। क्रान्तिवृत्त तथा चन्द्र विमण्डल का सम्पात पात संज्ञक होता है। यह पात मीनान्त से विलोम दिषा में भ्रमण करता है। पात से आगे तीन राषि अन्तर पर चन्द्र विमण्डल ४।३० अंश क्रान्तिवृत्त से दूर उत्तर की ओर होता है और पात से दक्षिण की ओर पीछे की तरफ विमण्डल तथा क्रान्तिवृत्त का अन्तर ४।३० अंश होता है। विमण्डल गत चन्द्र का क्रान्तिवृत्त से जो अन्तर होता है वह दक्षिणोत्तर विक्षेप होता है। उसको ज्ञात करने के लिए चन्द्र तथा पात का अन्तर ज्ञात करते हैं जिसके लिए चन्द्र तथा पात का योग करते हैं, क्योंकि पात की विलोम गति होती है। इस सपात चन्द्र की ज्या अनुपात किया कि यदि त्रिज्या तुल्य ज्या में परम २७० कला तुल्य विक्षेप होता है तो प्राप्त सपात चन्द्र में कितना होगा। प्राप्त फजल चन्द्रमा का विक्षेप होता है।

सूर्यसिद्धान्त के मध्यमाधिकार में भी चन्द्रमा का परम विक्षेप इस प्रकार कहा है -

भचक्रलिप्ताशीत्यंशैः परमं दक्षिणोत्तरम्।
विक्षिप्यते स्वपातेन स्वक्रान्त्यंशदनुष्णगुः।।

अर्थात् अपने पात के कारण चन्द्रमा अपने पासवाले क्रान्तिवृत्त के बिन्दु से २७० कला उत्तर या दक्षिण हट जाता है।

शरस्य स्पष्टीकरण -

सत्रिराशिग्रहद्युज्यानिघ्नस्त्रिज्योद्धृतः शरः।
स्फुटोऽसौ क्रान्तिसंस्कारे दक्कर्मण्यक्षजे तथा।।

विषुवदवृत्त से स्पष्ट क्रान्ति ध्रुवाभिमुख होती है। क्रातिंग्र पर शर कदम्बाभिमुख होता है। अतः इनके संस्कार करने के लिए क्रान्तिग्र पर जो द्युज्यावृत्त है उसके और शराग्र का जो ऋजु अन्तर है उससे संस्कृत करने से स्फुट होता है। अर्थात् शर और मध्यम क्रान्ति एक वृत्ती धरातल में नहीं होते। अतः उसका अन्तर कोटिरूप में है। शर कर्ण रूप है। इनके वर्गान्तर का मूल द्युज्यावृत्त में भुज है। इस प्रकार

तीन राशि युक्त ग्रह क्रान्तिध्रुव कदम्ब के सूत्रों का अन्तर होता है। इसकी ज्या भुज है। इसकी द्युज्या कोटि है तथा त्रिज्या कर्ण है। अतः यदि त्रिज्या में इतनी कोटि होती है तो शर में कितनी होगी?

$$\frac{\text{कोटि} \times \text{शर}}{\text{त्रिज्या}}$$

अतः कोटि रूप शर की ध्रुवोन्मुख ज्या से अक्षकर्म तथा दक्क करते हैं।

शर को निम्न क्षेत्र द्वारा भी समझ सकते है -

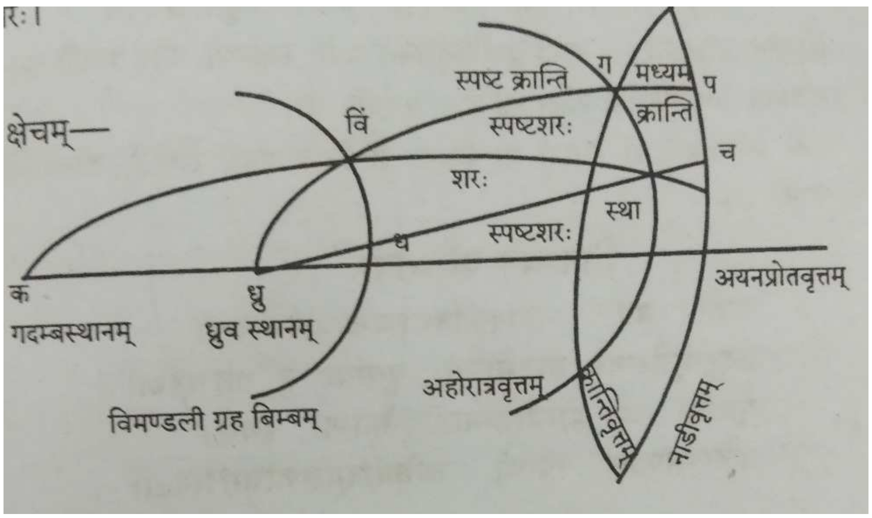

क्षेत्र में वि = विमण्डलीय ग्रहबिम्बम्। स्था = क्रान्तिवृत्त में ग्रहस्थान, विंस्था = विमण्डलीय ग्रह बिम्ब तथा क्रान्तिवृत्तीय ग्रह स्थान का अन्तर शर है। धस्था = विमण्डलीय ग्रह बिम्ब अहोरात्रवृत्त का अन्तर स्पष्टशर है, अथवा विंग = ध्रुवप्रोत्तवृत्त में विमण्डलीय ग्रह स्थान से क्रान्तिवृत्त एवं अहोरात्रवृत्त का अन्तर स्पष्ट शर है, गप = अहोरात्र तथा क्रान्तिवृत्त का सम्पात स्थान से नाड़ीवृत्त का अन्तर मध्यमाक्रान्ति, विं प = विमण्डलीय ग्रहस्थान से ग्रहोपरिगत ध्रुवप्रोतवृत्त एवं नाड़ीवृत्त का अन्तर = स्पष्ट शर + मध्यम क्रान्ति = स्पष्ट क्रान्ति होती है।

ग्रह बिम्ब पर गये हुए ध्रुवप्रोत्त वृत्त एवं अहोरात्र वृत्त का अन्तर जो ध्रुव प्रोतवृत्त में होता है वह स्पष्ट शर होता है। विमण्डलीय ग्रह बिम्ब एवं क्रान्तिवृत्त में ग्रह के स्थान के बीच जो कदम्ब प्रातवृत्त का भाग होता है वह शर होता है।

वलन -

खांका हतं स्वद्युदलेन भक्तं स्पर्शादिकालोत्थनतं लवाः स्युः।
तेषां क्रमज्या पलशिञ्जिनीघ्नी भक्ता द्युमौर्व्या यदवाप्तचापम्।।
प्रजायते प्रागपरे नते क्रमादुदग्यमाशं वलनं पलभोद्भवम्।।

जिस समय का बलन साधन करना हो उस समय जो नतघटी हो उसको ९० से गुणा करके चन्द्रग्रहण होने पर रात्रिर्ध से तथा सूर्य ग्रह होने पर दिनार्ध से विभक्त करने से प्राप्तफल अंशादि करते हैं। इनकी क्रमज्या को अक्षज्या से गुणा करके द्युज्या से विभक्त करने से प्राप्तफल का चाप अक्षबलन होता है। नत पूर्व होने पर यह उत्तर होता है तथा पश्चिम नत होने पर यह दक्षिण बलन होता है।

विषुववृत्त तथा क्रान्तिवृत्त का सम्पात मेशारम्भ तथा तुलारम्भ बिन्दुओं पर होता है तथा उनके बीच याम्योत्तर अन्तर भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न होता है तथ यह परम अन्तर परम क्रान्ति तुल्य होता है। इन पर परम अयनबलन २४ अंश की ज्या तुल्य होता है। वहॉं एक अयन संधि तो दक्षिणोत्तर है और उसके कारण एक पूर्व दिषा में है। वहॉं पर वलन नहीं होता। उसके बाद अनुपात से ग्रह की कोटिक्रमज्या को २४ अंश (जिनांश) की ज्या से गुणा करके द्युज्या से विभक्त करने से बलन दिग्बलन ज्या होती है। इसी प्रकार विषुवद्वृत्त से दक्षिणोत्तर क्षितिज में समवृत्त की अक्षांश ज्या तुल्य अन्तर होता है। क्षितिज में अक्षज्या के तुल्य अक्षबलन होता है। इन दोनों, अक्षबलन तथा अयनबलन का योग याम्योत्तर मध्य (स्फुट) बलन होता है। नतक्रमज्या साधित करके उसका अनुपात करने से नत को 90 से गुणा करके (सूर्य या चन्द्र के जिसका ग्रहण हो) दिनार्ध से विभक्त करने से नतांश ज्या होती है। नतांश क्रमज्या को अक्षक्रमज्या से गुणा करके द्युज्या से विभक्त करने से स्थूल अक्ष बलन ज्या होती है। पूर्वनत में उत्तर, पश्चिम नत में दक्षिण अक्षबलन चापों का योगान्तर करने से स्फुट अक्षबलन होता है।

इसी प्रकार क्रान्तिवृत्त और समवृत्त का जहॉं सम्पात परम होता है वहॉं तात्कालिक बलन का योगान्तर स्फुट बलन होता है। उसके आगे तथा पीछे क्रान्तिवृत्त में तीन राशि अन्तर पर उनका याम्योत्तर अन्तर एक ही हो जाने से वहॉं बलन स्फुट नहीं होता। स्पश्ट बलन का वहॉं अभाव होने से वहॉं क्रमज्या, उत्क्रमज्या नहीं होती। वहॉं उन्हें ज्ञात करने के लिए पुनः कहते हैं। सब ओर क्षेत्र सूत्र सभी ध्रुव से 24 अंष अन्तर पर योग करे तो वह बिन्दु कदम्ब संज्ञक होता है और वह बलन का बोध कराता है। अपमण्डल के पूर्व से उत्तर व दक्षिण दिषा में कदम्ब भ्रमण वृत्त सदा ध्रुवों के चारों ओर बंधे हुए घूमते है। गोल में जहॉं 24 अंष के तुल्य ज्या क्रान्तिज्या होती है। सभी जगह पर समवृत्त से

क्षितिज याम्योत्तर में मिलता है। उसके लम्बवत् सूत्र जहॉं योग करते हैं वह सम संज्ञक स्थान है। सम, ध्रुव और कदम्ब के उपर के अतिरिक्त अन्य स्थान पर ग्रह भ्रमण करते हैं। वृत्तरूप सूत्रों के बलनों के अन्तर पर अक्षबलन तथा अयनबलन के मध्य समध्रुव सूत्र होता है।

कदम्ब ध्रुव सूत्रों के अन्तर आनयन करके उससे तीन राशि दूरी पर कदम्ब सम सूत्रान्त पर वे सभी दिशाओं में स्फुट होते हैं। अथवा क्रान्ति वृत्तस्थ ग्रह के चारों ओर 90 अंश दूरी पर एक त्रिज्यावृत्त न्यास करके वहॉं विषुवद्समवृत्त के मध्य अन्तर के द्वारा अयन बलन ज्ञात करके विषुवद और क्रान्तिवृत्त का अन्तर ज्ञात करके क्रान्तिवृत्त समवृत्त का अन्तर स्फुट बलन होता है। अपमण्डल के पूर्व में उसका याम्योत्तर षर होता है उसको बलन आनयन के लिए क्रान्ति में योग करने के लिए कुबुद्धि लोग कहते हैं।

मकरादि से याम्योत्तर वृत्त यदि कदम्ब से होकर जाय तो विषुवद और क्रान्तिवृत्त के एक हो जाने से ऐसा होता है। वहॉं अयन बलन नहीं होता तथा वहॉं कदम्ब और ध्रुवप्रोत वृत्तों का अन्तर नहीं रहता है।

गोल अर्थात् क्रान्तिवृत्त में मकर के आदि स्थान उपलक्षण द्वारा अयन संधि कही है। वह जैसे -जैसे स्वअहोरात्रवृत्त में भ्रमण करती है वैसे-वैसे पूर्व प्रतिपादित प्रकार से कदम्ब अपने मण्डल में भ्रमण करता है। याम्योत्तर वृत्त जो ध्रुवप्रोत में स्थित कुम्भादि तथा मीनादि से होकर जाता है उसमें बलन होता है क्योंकि सौम्य सूत्र का कदम्ब से अन्तर षिंजनी रूप में कदम्ब भ्रमण मण्डल में अयन गत कालांश क्रम क्रान्तिज्या ही बलन होता है। उत्क्रमज्या बाण रूप होती है तथा त्रिज्या क्रमज्या होती है। सत्रिम सूर्य की क्रान्ति क्रमज्या से बलन आनयन करना चाहिये।

जिन आचार्यों ने जो उत्क्रमज्या से क्रान्तिज्या तुल्य कहा है व भ्रमवश कहा है। उस भ्रान्ति के निवारण के लिए ही आचार्य ने नतकाल की क्रमज्या ज्ञात करने के लिए कहा है न कि उत्क्रमज्या। और इसी युक्ति से विक्षेप तथा अक्षांश क्रमज्य से ज्ञात करने के लिए कहा है।

अयन तथा अक्षांश (रवि तथा चन्द्र) का के कारण रवि और चन्द्रग्रहण में वलन संस्कार कला प्रभावों के कारण आकाश के पूर्व पश्चिम कपाल में ग्रहण के स्पर्श, मध्य और मोक्ष की दिशा ज्ञान होता है। जिस दिशा में पूर्व कपाल या पश्चिम कपाल में ग्रहण होता है उसी दिशा में यह बलन होता है। सूर्य तथा चन्द्र, सूर्य ग्रहण में समान होने के कारण केवल चन्द्रमा द्वारा दोनों ग्रहों का आयनबलन निकाला जा सकता है। चन्द्रग्रहण में चन्द्र दिनार्ध से नत और सूर्यग्रहण में सूर्य दिनार्ध से नत निकाल

कर उसका पल बनायें। उसको 90 से गुणा करके अपने दिनार्ध पल से भाग देने पर अंशादि फल प्राप्त होता है। यह पूर्व पश्चिम दिनार्ध के अनुसार उसी दिशा में नत होता है। नत को अपने देश के अक्षांश से गुणा करके 90 से भाग देकर जो प्राप्त होता होगा वह पूर्वनत में उत्तर और पष्चिम नत में दक्षिण बलन होता है। अक्षबलन तथा अयन बलन की एक ही दिशा होने पर दोनों का योग तथा भिन्न दिशा होने पर अन्तर किया जाता है। प्राप्तफल चन्दग्रहण में चन्द्र का और सूर्यग्रहण में सूर्य का अंशादि दिग्बलन होता है। यह स्पष्ट बलन प्राप्त होता है । स्पर्श, मोक्ष आदि किस दिशा में किस प्रकार होगा इससे यह ज्ञात होता है।

स्पष्टबलन, ग्रसितग्रह के पूर्व अथवा पश्चिम बिन्दु का क्रान्तिवृत्त से कोण होता है वह होता है। इस कोण के दो भाग होते है। स्वस्थान के अक्षांश के कारण अर्थात् विषुवत् वृत्त से दूरी के कारण क्रान्तिवृत्त, क्षितिज को पूर्व कपाल में पूर्व बिन्दु से उत्तर की दिशा में काटता है। अतः क्रान्तिवृत्त ग्रहगोल के पूर्व बिन्दु से पूर्वकपाल में उत्तर की ओर है तथा पश्चिम कपाल में दक्षिण की ओर है। यह अक्ष बलन कहलाता है।

क्रान्तिवृत्त तथा विषुवत वृत्त के मध्य कोण के कारण क्रान्तिवृत्त जब सायन मकर याम्योत्तर पर होता है तब उत्तर की ओर और भी अधिक झुका होता है। जब सायन कर्क याम्योत्तर वृत्त पर 90 होता है। तब यह पूर्व कपाल में दक्षिण की ओर खिसक जाता है। पष्चिम कपाल के लिए दिशायें विपरीत होती है। बलन का यह भाग अयन बलन कहलाता है।

अब आप क्षेत्र द्वारा भी अयन बलन को समझ सकते हैं -

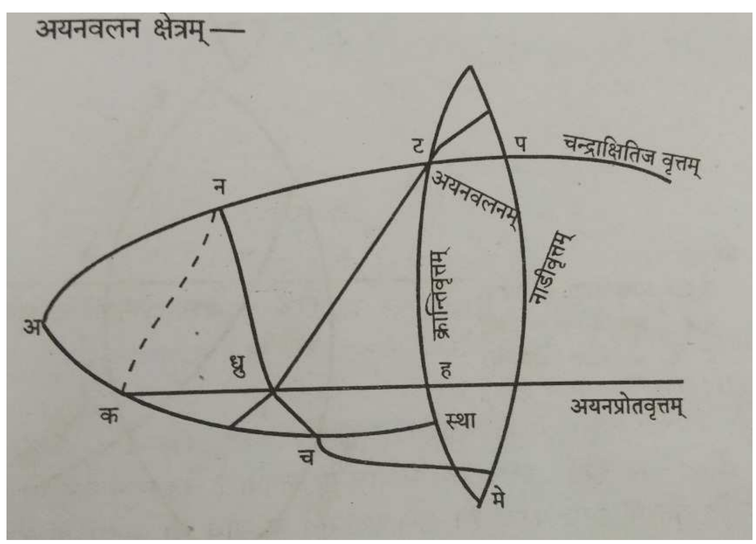

इस क्षेत्र में –‘ट प’ अयन बलन है। ग्रह बिम्ब एवं क्षितिज वृत्त के बीच नाड़ीवृत्त एवं क्रान्तिवृत्त का अन्तर अयन बलन होता है। यहॉ क्षेत्र में ‘टप’ अयनबलन है। अथवा ग्रह त्रिज्यावृत्त में नाड़ी और क्रान्तिवृत्त के बीच में जो अंश हैं वे अयनबलनांश हैं।

निम्न क्षेत्र द्वारा अक्षबलन एंव स्फुट बलन को इस प्रकार समझ सकते हैं -

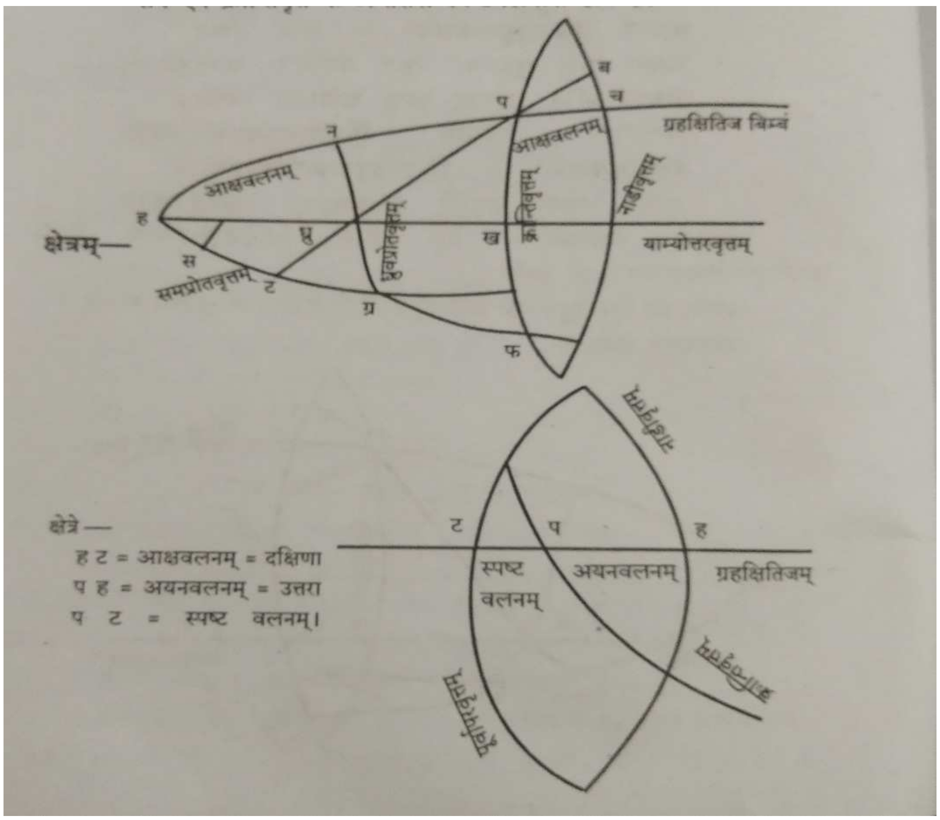

समप्रोत एवं ध्रुवप्रोतवृत्त दोनों के बीच में ग्रह पर लगने वाला कोण आक्षबलन होता है। सम एवं क्रान्तिवृत्त के अन्तरांश स्पष्टबलनांश होते हैं।

क्षेत्र में हट = आक्षबलन = दक्षिणा

प ह= अयनबलन = उत्तरा।

प ट = स्पष्ट बलन।

अभ्यास प्रश्न –

1. निम्न में शर का अर्थ है –
   क. बलन ख. दूरी या अन्तर ग. लम्बन घ. अक्षांश
2. गोलीय रीति के अनुसार स्थानीय बिम्बीयाहोरात्रवृत्त के अन्तर को क्या कहते है?
   क. मध्यम शर ख. स्पष्ट शर ग. बलन घ. नति
3. स्पष्ट शर किस वृत्त में होता है?
   क. अहोरात्र वृत्त में ख. ध्रुवप्रोतवृत्त में ग. नाड़ीवृत्त में घ. क्रान्तिवृत्त में
4. ग्रहक्षितिज में नाड़ी और क्रान्तिवृत्त का अन्तर क्या कहलाता है?
   क. अयन बलन ख. आक्ष बलन ग. स्फुट बलन घ. कोई नहीं
5. आयनबलन ± आक्षबलन = ?
   क. अयन बलन ख. आक्षबलन ग. स्फुट बलन घ. बलन
6. ग्रहस्थान से ९० अंश की त्रिज्या द्वारा निर्मित वृत् को
   क. ग्रहक्षितिज वृत्त ख. क्रान्तिवृत्त ग. नाड़ीवृत्त घ. अहोरात्रवृत्त में

4.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि गणित ज्योतिष में ग्रहण के अन्तर्गत शर एवं बलन का अध्ययन किया जाता है। सामन्यतया शर का अर्थ होता है – दूरी या अन्तर। इसी को विक्षेप भी कहते है। गोलीय रीति के अनुसार कदम्बप्रोत्तवृत्त में बिम्ब से ग्रहस्थान तक की दूरी (अन्तर) को मध्यम शर कहते है। स्थानीय बिम्बीयाहोरात्रवृत्त के अन्तर (ध्रुवप्रोतवृत्त) में को स्पष्ट शर कहते हैं। ग्रहबिम्बोपरिगत कदम्बप्रोतवृत्त क्रान्तिवृत्त में जहाँ लगता है, उसका नाम ग्रहस्थान है। जिस स्थान से जो ९० अंश की त्रिज्या से वृत्त बनता है, उसे तत्सम्बन्धित क्षितिजवृत्त कहते हैं। जैसे ग्रहस्थान से ९० अंश की त्रिज्या द्वारा निर्मित वृत् को ग्रहक्षितिज वृत्त कहेंगे।

ग्रहक्षितिज वृत्त में ग्रहगतकदम्बप्रोत वृत्त और ध्रुवप्रोत वृत्त के अन्तर को तथा क्रान्तिवृत्त और नाड़ीवृत्त के अन्तर को आयनबलन कहते हैं। इसी प्रकार ग्रहक्षितिज में ही नाड़ी और पूर्वापरवृत्त के अन्तर को एवं ग्रहगतध्रुवप्रोतवृत्त और समप्रोतवृत्त के अन्तर को आक्षबलन कहते हैं। तथा पूर्वापरवृत्त और नाड़ीवृत्त के अन्तर को अथवा ग्रहगतसमप्रोतवृत्त और कदम्ब प्रोतवृत्त के अन्तर को स्पष्टबलन कहते हैं। इस तरह बलन तीन प्रकार का होता है।

4.5 पारिभाषिक शब्दावली

शर – सामन्यतया शर का अर्थ होता है – दूरी या अन्तर। इसी को विक्षेप भी कहते है। गोलीय रीति के अनुसार कदम्बप्रोत्तवृत्त में बिम्ब से ग्रहस्थान तक की दूरी (अन्तर) को मध्यम शर कहते है।

स्पष्टशर – स्थानीय बिम्बीयाहोरात्रवृत्त के अन्तर (ध्रुवप्रोतवृत्त) में को स्पष्ट शर कहते हैं।

ग्रहस्थान – ग्रहबिम्बोपरिगत कदम्बप्रोतवृत्त क्रान्तिवृत्त में जहाँ लगता है, उसका नाम ग्रहस्थान है।

बलन – बलतीति बलनम्। यह तीन प्रकार का होता है। अयनबलन, आक्षबलन एवं स्फुट बलन।

अयन बलन – ग्रहक्षितिज में नाड़ी और क्रान्तिवृत्त का अन्तर अयन बलन कहलाता है।

आक्षबलन - ग्रहक्षितिज में ही नाड़ी और पूर्वापरवृत्त के अन्तर को एवं ग्रहगतध्रुवप्रोतवृत्त और समप्रोतवृत्त के अन्तर को आक्षबलन कहते हैं।

स्पष्टबलन - पूर्वापरवृत्त और नाड़ीवृत्त के अन्तर को अथवा ग्रहगतसमप्रोतवृत्त और कदम्ब प्रोतवृत्त के अन्तर को स्पष्टबलन कहते हैं।

4.6 अभ्यास प्रश्न के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – की उत्तरमाला

1. ख 2. ख 3. ख 4. क 5. ग 6. क

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) सिद्धान्तशिरोमणि – मूल लेखक – भास्कराचार्य, टीका – कृष्णचन्द्रद्विवेदी।

(ख) सूर्यसिद्धान्त – टिककार – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय।

(ग) सूर्यसिद्धान्त – टिकाकार – महावीरप्रसाद श्रीवास्तव।

(घ) ग्रहलाघवम् – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय।

(ड.) ग्रहलाघवम् - केदारदत्त जोशी।

4.8 सहायक पाठ्यसामग्री

सूर्यसिद्धान्त – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

सिद्धान्तशिरोमणि – डॉ0 सत्यदेव शर्मा

ग्रहलाघवम् – टिकाकार- प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

ग्रहलाघवम् – केदारदत्त जोशी

सिद्धान्ततत्वविवेक – मूल लेखक – कमलाकर भट्ट, टिका – कृष्णचन्द्रद्विवेदी।

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. शर क्या है।
2. बलन किसे कहते है।
3. शर को क्षेत्र द्वारा स्पष्ट कीजिये।
4. बलन का साधन कीजिये।
5. ग्रहण में शर एवं बलन का क्या महत्व है।

इकाई - 5 लम्बन एवं नति

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 लम्बन एवं नति परिचय
5.4 लम्बन एवं नति का गणितीय पक्ष
5.5 पारिभाषिक शब्दावली
5.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.8 सहायक पाठ्यसामग्री
5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -504 के प्रथम खण्ड की पंचम इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – लम्बन एवं नति। इससे पूर्व आपने शर एवं बलन से जुड़े विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप लम्बन एवं नति के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

'ग्रहण' गणित ज्योतिष का महत्वपूर्ण अंग है। इसके ज्ञान से ज्योतिष शास्त्रानुरागियों का इस शास्त्र के प्रति और विश्वास बढ़ जाता है। सामान्यतया हम जानते है कि ग्रहण एक खगोलीय घटना है, जो आकाश में दो पिण्डों के कारण होता है।

आइए इस इकाई में हम लोग 'ग्रहण' के बारे में उसकी गणितीय एवं फलित सिद्धान्तों को जानने का प्रयास करते है।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- लम्बन को परिभाषित कर सकेंगे।
- नति को समझा सकेंगे।
- 'ग्रहण' में लम्बन एवं नति की उपयोगिता को जान लेंगे।
- ग्रहण में लम्बन एवं नति के महत्व को समझा सकेंगे।

5.3 लम्बन एवं नति परिचय

लम्बन नति का प्रयोजन -

अमावस्यान्तकाल पर समकल चन्द्र-सूर्य को द्रष्टा पृथ्वी पर स्थित होकर कुछ नत (झुका हुआ) देखता है उनको वह भूकेन्द्र से होकर जाते हुए एक सूत्र की सीध में नहीं देख पाता है क्योंकि सूर्य चन्द्र की भिन्न कक्षायें इसका कारण हैं। चन्द्र कक्षा लघु तथा सूर्य कक्षा दीर्घ होती है। चन्द्र ग्रहण में जो चन्द्र की कक्षा होती है वही भूभा की होती है। वहाँ तिथ्यन्त पर भूभा तथा चन्द्र की नति समान होती है अतः भूमध्य से उपर जाते हुए सूत्र की सीध में ही द्रष्टा उन्हें देखता है लेकिन सूर्यग्रहण में सूर्य-चन्द्र को उनकी भिन्न कक्षा होने के कारण द्रष्टा उन्हें एक सूत्र में नहीं देखता। इस कारण से लम्बन नति को कहा गया है, जिनके कारण सूर्यग्रहण में सूर्य-चन्द्र एक सूत्र में नहीं दिखाई देते हैं। यथा भास्कराचार्य जी ने लम्बन नति के प्रयोजन को अपने ग्रन्थ सिद्धान्तशिरोमणि में कहा है -

दर्शान्तकालेऽपि समौ रवीन्दू द्रष्टा नतौ येन विभिन्नकक्षौ।
क्वर्धोच्छ्रितः पश्यति नैकसूत्रे तल्लम्बनं तेन नतिं च वच्मि।।

नति-लम्बन का कारण -

पर्वान्तेऽर्कं नतमुडुपतिच्छन्नमेव प्रपश्येत्।
भूमध्यस्थो न तु वसुमतीपृष्ठनिष्ठस्तदानीम्।।
तदृकसूत्राद्बिमरूचिरधो लम्बितोऽर्कग्रहेऽतः।
कक्षाभेदादिह खलु नतिर्लम्बनं चोपपन्नम्।।
समकलकाले भूभा लगति मृगांके यतस्तयाम्लानम्।।
सर्वे पश्यन्ति समं समकक्षत्वान्न लम्बनावनती।
पूर्वाभिमुखो गच्छन् कुच्छायान्तर्यतः शशी विशति।।
तेन प्राक् प्रग्रहणं पश्चान्मोक्षोऽस्य निःसरतः।
भानोर्बिम्बपृथुपृथिव्याः प्रभा हि सूच्यग्रा।
दीर्घतया शशिकक्षामतीत्य दूरं बहिर्याता।।
अनुपातात् तदैर्घ्यं शशिकक्षायां च तद्बिम्बम्।
भूभेन्दोरन्यदिशि व्यस्तः क्षेपः शशिग्रहे तस्मात्।।

भूमध्य में स्थित द्रष्टा द्वारा दर्शान्तकाल अर्थात् अमान्त काल में सूर्य को पूर्व अथवा पश्चिम की ओर नत होकर ढकता हुआ चन्द्रमा दिखाई देता है क्योंकि दर्शान्त काल में वे दोनों समान स्थिति में होते है। लेकिन भूपृष्ठ पर स्थित द्रष्टा इस प्रकार से सूर्य को ढका जाता हुआ नहीं देखता। वह अपने दृष्टि सूत्र की सीध से चन्द्रमा को नीचे लंबित होता हुआ दिखाई देता है। अतः सूर्य चन्द्र के कक्षाभेद होने से लम्बन तथा नति का उत्पन्न होने का कारण सिद्ध होता है। चन्द्रग्रहण में लम्बन तथा नति का उत्पन्न होने का कारण सिद्ध होता है। चन्द्रग्रहण में लम्बन तथा नति उत्पन्न नहीं होती क्योंकि समकलकाल में भूभा चन्द्र को आच्छादित करती हुई उस पर लगती है अतः दोनों की एक ही कक्षा होने के कारण पृथ्वी के उपर स्थित सभी स्थानों से चन्द्रमा को समान देखते हैं, क्योंकि वहाँ पर छाद्य चन्द्र तथा छादक भूभा की एक ही कक्षा है। भूभा पूर्वाभिमुख होकर सूर्य की गति तुल्य गति से ही चलती है और चन्द्रमा अपनी स्वगति से चलता है तथा वह भूभा से भी शीघ्रगति से पूर्वाभिमुख गमन करता हुआ भूभा में स्वयं प्रवेश करता है। अतः इस प्रकार उसका चन्द्रग्रहण के समय पूर्व की ओर से स्पर्श होता है तथा भूभा में से बाहर निकलते समय उसके पश्चिम की ओर से मुक्ति होती है। रवि का बिंब बडा होता है तथा पृथ्वी का लघु होता है अतः भूभा सूचिकाकार होती है। वह दीर्घ होने के कारण चन्द्रकक्षा तक होते हुए दूर तक जाती है। उसकी दैर्घ्यता अनुपात से साधित करते है। चन्द्रकक्षा प्रदेश पर भूभा चन्द्र बिम्ब तुल्य होने पर चन्द्रमा का पूर्ण ग्रहण होना प्रतिपादित होता है।

अनुपात द्वारा लम्बन ज्ञान -

त्रिभोनलग्नं तरणिं प्रकल्प्य तल्लग्नयोर्यः समयोऽन्तरेऽसौ।
त्रिभोनलग्नस्य भवेद्द्युयातः शङ्क्वाद्यतस्तस्य चरान्तकाद्यैः।।
त्रिभोनलग्नार्कविशेषशिंजनी कृताहता व्यासदलेन भाजिता।
हतात् फलाद्वित्रिभलग्नशंकुना त्रिजीवयाप्तं घटकादि लम्बनम्।।

दर्शान्त काल पर लग्न ज्ञात करके उसको वित्रिभ करके, उस वित्रिभ के भुक्त भोग्य के अन्तर को लग्न के उदय काल में जोड़ देने से वित्रिभ का उदय काल प्राप्त होता है। इस काल से वित्रिभ लग्न जनित कुज्या, द्युज्या, अन्त्या तथा पूर्व में पठितानुसार शंकु का साधन करे। शंकु से दृग्ज्या तथा उसका छायाकर्ण साधित करे। फिर त्रिभोन लग्न तथा सूर्य के अन्तर की ज्या का साधन करे।

पुनः लम्बन ज्ञात करने के लिए अनुपात करना चाहिए कि यदि त्रिज्या तुल्य वित्रिभ लग्न तथा सूर्य के अन्तर की ज्या से चार घटी लम्बन (परम लम्बन) प्राप्त होता है तो अभीष्ट में क्या? प्राप्तफल मध्यम लग्न होगा। इसको स्फुट करने के लिए दूसरा अनुपात करे कि यदि त्रिज्या तुल्य वित्रिभलग्न शंकु का इतना लम्बन होता है तो इतने नत अन्तर में क्या? प्राप्त फल स्फुट लम्बन होगा। त्रिभोन लग्न में से सूर्य के अन्तर की ज्या को चार से गुणा करके त्रिज्या से विभक्त करने से प्राप्त फल को वित्रिभ लग्नशंकु से गुणा करके त्रिज्या से विभक्त करने से घटकादि लम्बन स्फुट होता है।

लम्बन नति को यहाँ क्षेत्र में देखकर आप समझ सकते हैं -

क्षेत्रम्—

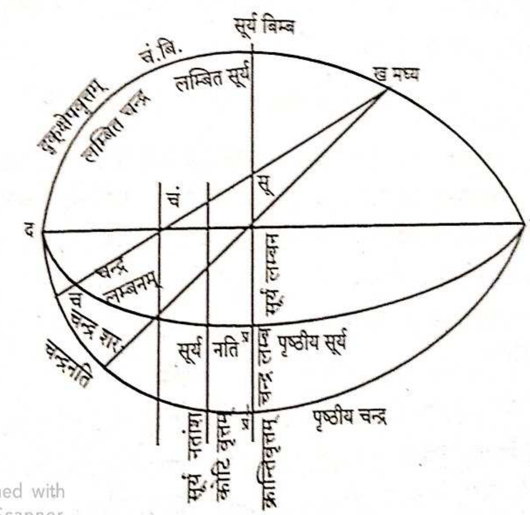

Scanned with CamScanner

क्षेत्र में - सू पृ = सूर्य लम्बन, चं पृ = चन्द्र लम्बन, सू पृ – चं पृ = चन्द्रस्पष्ट लम्बन – सूर्य स्पष्ट लम्बन = गर्भीय दर्शान्त में स्पष्ट लम्बन = पृ पृ।

सूर्यग्रहण में लम्बन होता है। दर्शक भूमि पर खड़ा होकर सूर्य से चन्द्रमा को कुछ लम्बित देखता है तो दोनों बिम्बों का पूर्वापरान्तर को लम्बन दक्षिण से उत्तर का अन्तर नति कहलाता है।

भास्कराचार्य जी के अनुसार –

1. जिस समय ग्रह खस्वस्तिक पर रहता है उस समय उसमें किसी प्रकार का लम्बन नहीं होता क्योंकि पृथ्वी के केन्द्र से ओर द्रष्टा से ग्रह तक खींची गयी रेखायें एक ही होती है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि भास्कराचार्य ने पृथ्वी को पूर्ण गोल माना था क्योंकि तभी यह बात स्पष्ट होती है।
2. जिस समय ग्रह त्रिभोन लग्न पर होता है अर्थात् जिस समय ग्रह क्रान्तिवृत्त के उस बिन्दु पर होता है जो उदय लग्न से तीन राशि कम होता है तब ग्रह में भोगांश लम्बन नहीं होता, केवल नति होती है।
3. जिस समय क्रान्तिवृत्त खस्वस्तिक से होता हुआ उर्ध्ववृत्त बनाता है और ग्रह क्रान्तिवृत्त पर होता है उस समय उसमें शरलम्बन नहीं होता, केवल भोगांश लम्बन होता है।
4. किसी समय का भोगांश लम्बन जानने के लिए पहले यह जानना आवश्यक है कि उस समय के त्रिभोन लग्न का नतांश या उन्नतांश क्या है, क्योंकि त्रिभोन लग्न के उन्नतांश की ज्या सूत्र का एक अंग है। त्रिभोन लग्न के नतांश की ज्या को दृक्क्षेप और उन्नतांश की ज्या को अथवा नतांश की कोटिज्या को दृग्गति कहा गया है।

ग्रहों के मध्यम, परम लम्बन मान

ग्रह	भास्कराचार्य के अनुसार मध्यम परम लम्बन	आजकल के वेधों से प्राप्त परम लम्बन		आधुनिक वेधों से प्राप्त स्पष्ट बिम्ब	
		लघुत्तम	महत्तम	लघुत्तम	महत्तम
	विकला मान	विकला	विकला	विकला	विकला
सूर्य	२३६.५	८.७	९.०	१८९०	१९५६
चन्द्रमा	.३१६२.३	३१८६	३७२०	१७४०	२०२८
मंगल	१२५.७	३.५	१६.९	४.४	२१.२
बुध	९८२.१	६.४	१४.४	४.८	१०.९
गुरु	२०.०	१.४	२.१	३१.६	४६.७
शुक्र	३८४.५	५.०	३१.४	९.६	६०.०
शनि	८.०	०.८	१.०	१५.८	१९.५

दृष्टि स्थान के भेद अथवा कारण से ग्रह आकाश में अलग देखे जाते हैं। गर्भस्थान की दृष्टि से गर्भीय एवं पृष्ठ स्थान की दृष्टि से देखे जाने पर पृष्ठीय ग्रह दिखाई पड़ता है। चन्द्र एवं सूर्य कक्षा के गर्भीय पृष्ठीय ग्रहों के अन्तर को दृग्वृत्त में दृग्लम्बन और गर्भीय पृष्ठीय ग्रहगतकदम्बप्रोतवृत्त के अन्तर को क्रान्तिवृत्त में स्फुट लम्बन कहते हैं। तथा गर्भीय पृष्ठीय ग्रहों (सूर्य-चन्द्र) के शरान्तर को कदम्बप्रोत वृत्त में नति कहते हैं।

नति का परमत्व – वित्रिभ में **परमाल्पिका** – पृष्ठ क्षितिज में

नति का अभाव – खमध्य में

लम्बन का परमत्व – पृष्ठ क्षितिज में **अभाव** – वित्रिभ तथा खमध्य में।

दृग्गर्भसूत्रयोरैक्यात् खमध्ये नास्ति लम्बनम्।

लम्बन का भावाभाव एवं धनर्ण विचार –

मूल श्लोक –

दर्शान्तलग्नं प्रथमं विधाय न लम्बनं वित्रिभलग्नतुल्ये।

रवौ तदूनेऽभयधिके च तत् स्यादेवं धनर्णं क्रमतश्च वेद्यम्।।

अर्थात् अमावस्या का लग्न ज्ञात कर उसका त्रिभोन लग्न ज्ञात करें। प्राप्त त्रिभोन लग्न के समय रवि का लम्बन नहीं होता। सूर्य यदि इससे न्यून अथवा अधिक हो तब इसका लम्बन होता है तथा वह क्रमश: धन एवं ऋण होता है। वित्रिभ लग्न के तुल्य रवि के रहने पर लम्बन नहीं होता है।

यहाँ सर्वप्रथम स्पष्ट करते हैं कि लम्बन क्या होता है? चन्द्रग्रहण में क्योंकि चन्द्रमा भूच्छाया द्वारा आच्छादित होता है अत: वह द्रष्टा की पृथ्वी पर किसी भी स्थिति से दृश्यमान होने में प्रभावित नहीं होता। लेकिन चन्द्रमा जब सूर्यग्रहण में सूर्य को आच्छादित करता है तब उसकी दृश्यस्थिति द्रष्टा के पृथ्वी पर विभिन्न स्थानों पर से प्रभावित होती है। यह लम्बन के कारण होता है। यथा -

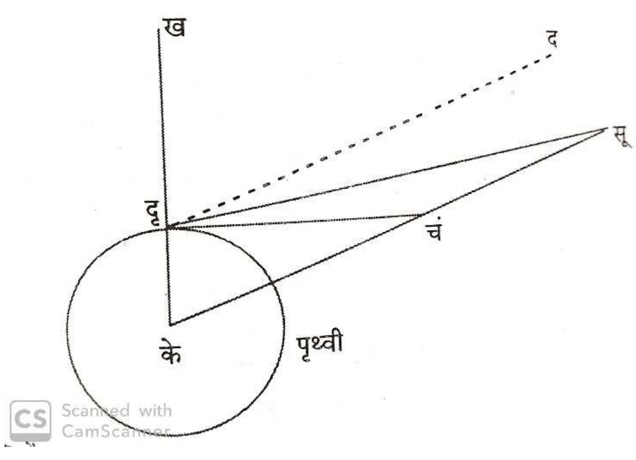

क्षेत्र में,

के = भू केन्द्र है।

दृ = द्रष्टा की पृथ्वी के उपर की स्थिति है।

ख = खमध्य है।

चं = चन्द्रमा है।

सू = सूर्य है।

दृ द = रेखा के चं सू के समानांतर खींची गई है।

द्रष्टा भूकेन्द्र (के) से चन्द्रमा को (के चं) रेखा में देखता है तथा वहाँ से चन्द्रमा का नतांश ख के चं = ख दृ द है। लेकिन दृ स्थान पर बैठा हुआ द्रष्टा चन्द्रमा को (दृ चं) रेखा में देखता है तथा वहाँ से चन्द्रमा का नतांश ख दृ चं है तथा –

< ख दृ चं = < ख के चं + < के चं दृ = < ख दृ द + < द दृ चं तथा < दृ चं के, < ख के चं के लिए लम्बन शुद्धि है।

सूर्य के लिए लम्बन शुद्धि < दृ सू के है। यह चन्द्र की लम्बन शुद्धि से अल्प है। < दृ चं के लम्बन का मान होता है।

लग्न से प्राप्त ९० अंश का वृत्त क्रान्तिवृत्त में जहाँ लगता है वहीं वित्रिभ लग्न होता है। वित्रिभ लग्न के तुल्य सूर्य होने पर स्पष्ट लम्बन का अभाव होता है। कदम्ब प्रोत वृत्त रवि के उपर से तथा दूसरा कदम्बप्रोतवृत्त लंबित रवि के उपर से क्रान्तिवृत्त में जहाँ-जहाँ लगता है उनके बीच का क्रान्तिवृत्त पर चाप रवि का स्पष्ट लम्बन होता है। लेकिन जब सूर्य वित्रिभ लग्न में रहता है तब उसके ऊपर दृग्वृत्त तथा रवि और लम्बित रवि के ऊपर से कदम्ब प्रोत वृत्त एक ही दृक्क्षेप वृत्त होता है। अत: वहाँ पर स्पष्ट लम्बन का अभाव होता है।

गर्भीय अमान्तकाल में स्थानाभिप्रायिक रवि और चन्द्रमा एक ही बिन्दु रेखा में होते हैं अत: एक ही दृग्वृत्त में लंबित रवि और लंबित चन्द्र होते हैं। लंबित रवि से लंबित चन्द्र पृष्ठ में लंबित होता है। अत: वित्रिभ से रवि अल्प होने पर लंबित रवि के ऊपरीगत कदम्ब प्रोतवृत्त क्रान्तिवृत्त में जहाँ लगता है उससे अधोभाग में लम्बित चन्द्र परिगत कदम्ब प्रोतवृत्त क्रान्तिवृत्त में लगेगा। अत: यहाँ शीघ्रगति ग्रह (लंबित चन्द्र स्थान) से मन्दगति (लंबित सूर्य स्थान) के आगे रहने के कारण युति गम्य होती है। अत: गर्भीय अमान्त से पृष्ठीय अमान्त स्पष्ट लम्बान्तर के पश्चात् होता है। इसलिए गर्भीय अमान्तकाल में स्पष्ट लम्बान्तर के जोड़ने से पृष्ठीय अमान्तकाल होता है। वित्रिभ से रवि अधिक रहने पर लंबित रवि से लंबित चन्द्रमा अधोभाग में होता है। अत: लंबित रवि ऊपर गत कदम्ब प्रोत

वृत्त और क्रान्तिवृत्त का सम्पात ऊपर होता है अत: मध्यगति ग्रह से शीघ्रगति ग्रह के आगे रहने के कारण युति गत होती है। अत: गर्भीय अमान्तकाल में स्पष्ट लम्बान्तर को ऋण करने से पृष्ठीय अमान्तकाल होता है।

5.4 लम्बन नति का गणितीय पक्ष –

सूत्र रूप में -

$$\text{लम्बन} = \frac{4 \times \text{वित्रिभलग्नऽर्कान्तर ज्या}}{\text{त्रिज्या}} \times \frac{\text{वित्रिभ लग्न शंकु}}{\text{त्रिज्या}}$$

यहाँ आचार्य द्वारा दो अनुपात किये गये हैं प्रथम यह कि यदि वित्रिभ लग्न खमध्य हो जाय अर्थात् वित्रिभलग्नऽर्क अन्तर ज्या यदि त्रिज्या तुल्य हो जाय तो क्षितिज पर परमलम्बन का मान 4 नाडी होता है, तब प्राप्त वित्रिभ लग्नार्क अन्तर ज्या में कितना लम्बन होगा? दूसरा अनुपात यह किया है कि यदि वित्रिभ लग्न खमध्य पर न हो तब यदि वित्रिभ लग्न की नतांश कोज्या यदि त्रिज्या तुल्य हो जाय तो तब मध्यम लम्बन $\frac{4 \times \text{वित्रिभलग्नऽर्कान्तर ज्या}}{\text{त्रिज्या}}$ होता है।

अभ्यास प्रश्न –

1. गर्भीय पृष्ठीय ग्रहों (सूर्य-चन्द्र) के अन्तर को क्या कहते है?
   क. नति ख. लम्बन ग. वित्रिभ घ. सत्रिभ
2. निम्न में गर्भीय पृष्ठीय ग्रहों का शरान्तर क्या है –
   क. लम्बन ख. वित्रिभ ग. नति घ. विक्षेप
3. सूर्य एवं चन्द्रमा किस काल में एक ही कक्षा में होते हैं?
   क. पूर्णिमा में ख.अमान्त काल में ग. दशमी तिथि को घ. त्रयोदशी तिथि को
4. लम्बन का अभाव कहाँ होता है?
   क. पृष्ठ क्षितिज में ख. खमध्य में ग. वित्रिभ में घ. सत्रिभ में
5. नति का परमत्व कहाँ होता है?
   क. वित्रिभ में ख. खमध्य में ग. पृष्ठ क्षितिज में घ. दृग्वृत्त में
6. लम्बन एवं नति दोनों का अभाव कहाँ होता है?
   क. वित्रिभ में ख. खमध्य में ग. दृग्वृत्त में घ. कहीं नहीं

नति उपपत्ति -

अथ याम्योत्तरायां तु भित्तौ पूर्वोक्तमालिखेत्।
ये कक्षामण्डले तत्र ज्ञेये दृक्क्षेपमण्डले।।
त्रिभोनलग्नदृग्ज्या या स दृक्क्षेपो द्वयोरपि।
तच्चापांशैर्नतो बिन्दू कृत्वा वित्रिभसंज्ञकौ।
तल्लम्बनकलाः प्राग्वज्ज्ञेयास्ता नतिलिप्तिकाः।।
कक्षयोरन्तरं यत् स्याद्वित्रिभे सर्वतोऽपि तत्।
याम्योत्तरं नतिः सात्र दृक्क्षेपात् साध्यते ततः।।

गर्भीय पृष्ठीय सूर्यचन्द्रग्रह के शरान्तर का नाम नति है। अतः याम्योत्तर दिशा में नति को दर्शायें। जहाँ पहले कक्षामण्डल बताया गया वहॉ दृक्क्षेप मण्डल जानना चाहिए। दर्शान्त में सूर्य तथा चन्द्र के त्रिभोनलग्न की जो दृग्ज्या है वह दृक्क्षेप है। ब्रह्मगुप्त मतानुसार उसके चापांश के वित्रिभ लग्न का शर संस्कार करने से चन्द्र का दृक्क्षेप चापांश होता है। उनके वृत्तों में खमध्य से स्वस्व दृक्क्षेप चापांश तुल्य सूर्य तथा चन्द्र के नत बिन्दु बनाये, इनकी वित्रिभ संज्ञा है। फिर पूर्ववत् जैसे सूर्यचन्द्र का लम्बन कहा गया है। उसको ही यहाँ पर याम्योत्तर अन्तर नति के नाम से समझना चाहिये। अर्थात् जैसे पूर्व में भूमध्य और भूपृष्ठ से जो सूत्र बनाये गये हैं उनसे जैसे लम्बन कला कही है उसको यहॉ नतिकला कहते हैं। नति का अर्थ चन्द्रसूर्य का अपनी कक्षा में याम्योत्तर अन्तर होता है। वित्रिभ लग्न स्थान पर जो याम्योत्तर अन्तर चन्द्र-सूर्य में होता है वही अन्तर सर्वत्र होता है। इस अन्तर को दृक्क्षेप के द्वारा साधित करने से नति का मान ज्ञात होता है।

दृक्क्षेपमण्डल, त्रिभोन लग्न दृग्मण्डल को कहते है। ब्रह्मगुप्त ने त्रिभोन लग्न से लम्बन तथा नति साधन करने में त्रिभोन लग्न की दृग्ज्या को दृक्क्षेप चन्द्र तथा सूर्य दोनों के लिए कहा गया है। उसके चापांश के लिए यहॉ आचार्य ने कहा है।

स्फुट लम्बन का अर्थ - जहॉ कही सूर्य से नीचे चन्द्रमा जितना नत दिखाई देता है वह वहॉ पर दोनों दृग्वृत्तों गर्भीय सूत्र तथा भूपृष्ठीय सूत्र का अन्तर चन्द्र-सूर्य का पूर्वापर अन्तर होता है।

पूर्वापर तथा दक्षिणोत्तर में ये दोनों अन्तर अपमण्डल में पूर्व दिशा में तथा उसके लम्बवत् दक्षिणोत्तर में क्रमश: होते हैं।

पूर्वापर में होने वाले अन्तर को लम्बन कहा है तथा दक्षिणोत्तर में होने वाले अन्तर को नति के नाम से जानते हैं। नति लिप्ता तुल्य भुज, दृग्लम्बन कला तुल्य कर्ण तथा इनके वर्गो के अन्तर का मूल कोटि रूप स्पष्ट लम्बन लिप्तिका होता है।

परमलम्बन लिप्ता 48/46 को रविदृग्ज्या से गुणा करके त्रिज्या से विभक्त करने से दृग्लम्बन कला प्राप्त होते हैं और दृक्क्षेप के द्वारा इसी प्रकार नति का मान प्राप्त होता है।

सूर्य चन्द्र की गति के अन्तर का पन्द्रहवॉं भाग परमलम्बन लिप्ता 48/46 होता है और गति योजन 118,58/45 का पन्द्रहवॉं भाग भूव्यासार्ध 790/35 तुल्य होता है। जो लम्बकला प्राप्त होती है उनको सूर्य, चन्द्र के गति अन्तर से विभक्त करने से लम्बन काल घटियॉं प्राप्त होती है उनको सूर्य, चन्द्र के गति अन्तर से विभक्त करने से लम्बन काल घटियॉं प्राप्त होती है। अर्थात् लम्बनकला × 60 लम्बन काल होती हैं।

गति अन्तर

पूर्वकपाल में सूर्य से चन्द्रमा आगे रहता है तथा पश्चिम कपाल में लम्बित पीछे रहता है।
अतः पूर्वकपाल में लम्बन काल ऋण तथा पश्चिम कपाल में धन होता है क्योंकि शीघ्रगति ग्रह यदि मन्दगति ग्रह से आगे रहता है तो इसका अर्थ है दोनों की युति हो चुँकि तथा यदि पीछे रहता है तो इसका अर्थ है कि गति अब आगे होगी।

याम्योत्तर में जो शर है वह सूर्य-चन्द्र का अन्तर है और नति भी वही है। अतः शर में नति का संस्कार धन-ऋण करने से स्फुट शर प्राप्त होता है।

लम्बन साधन का उदाहरण –

कल्पना किया कि – स्पष्टसूर्य = १०।०३।१५।३६, स्पष्ट चन्द्र = १०।०३।१५।३६ तथा स्पष्ट लग्न = २।१८।७।५७।

पर्वान्तिकालीन स्पष्ट लग्न में ३ राशि घटाने से या कम करने से वित्रिभ लग्न = ०७।०३।१५।३६ हुआ। वित्रिभ लग्न की उत्तरा क्रान्ति ४।४० होती है। सायन सूर्य या वित्रिभ के उत्तर गोल में होने से यह ४।४० उत्तरा क्रान्ति हुआ। काशी में दक्षिण अक्षांश = २५।२६, उत्तरा क्रान्ति = ४।४० का भिन्न दिशा से अन्तर = २०।४६ यह नतांश हुआ।

नतांश = २०।४६ का २२ वाँ भाग = ०।५६ हुआ, ०।५६ का वर्ग १।१ यह वर्ग संख्या २ से कम होने से विशेष संस्कार की आवश्यकता नहीं है। इस वर्ग को १२ में जोड़ देने से १२ + १।१ = १३।१

इसका नाम हार है। सूर्य व वित्रिभ के अन्तरांश ७४।५२।२१ का दशमांश = ७/२९ को १४ में घटाने से ६।३१ होता है। दशमांश × १० – दशमांश = ७/२९ × ६।३१ = ४८।४० हुआ। ४८।४० में हार १३।१ का भाग देने से स्वल्पान्तर से घटी =३, पल = ४४ यह लम्बन का घटिकादिक मान गणित से सिद्ध होता है। स्पष्ट सूर्य से स्पष्ट वित्रिभ लग्न अधिक होने से लम्बन धन सिद्ध होता है।

5.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि अमावस्यान्तकाल पर समकल चन्द्र-सूर्य को द्रष्टा पृथ्वी पर स्थित होकर कुछ नत (झुका हुआ) देखता है उनको वह भूकेन्द्र से होकर जाते हुए एक सूत्र की सीध में नहीं देख पाता है क्योंकि सूर्य चन्द्र की भिन्न कक्षायें इसका कारण हैं। चन्द्र कक्षा लघु तथा सूर्य कक्षा दीर्घ होती है। चन्द्र ग्रहण में जो चन्द्र की कक्षा होती है वही भूभा की होती है। वहाँ तिथ्यन्त पर भूभा तथा चन्द्र की नति समान होती है अतः भूमध्य से उपर जाते हुए सूत्र की सीध में ही द्रष्टा उन्हें देखता है लेकिन सूर्यग्रहण में सूर्य-चन्द्र को उनकी भिन्न कक्षा होने के कारण द्रष्टा उन्हें एक सूत्र में नहीं देखता। इस कारण से लम्बन नति को कहा गया है, जिनके कारण सूर्यग्रहण में सूर्य-चन्द्र एक सूत्र में नहीं दिखाई देते। भूमध्य में स्थित द्रष्टा द्वारा दर्शान्तकाल अर्थात् अमान्त काल में सूर्य को पूर्व अथवा पश्चिम की ओर नत होकर ढकता हुआ चन्द्रमा दिखाई देता है क्योंकि दर्शान्त काल में वे दोनों समान स्थिति में होते है। लेकिन भूपृष्ठ पर स्थित द्रष्टा इस प्रकार से सूर्य को ढका जाता हुआ नहीं देखता। वह अपने दृष्टि सूत्र की सीध से चन्द्रमा को नीचे लंबित होता हुआ दिखाई देता है। अतः सूर्य चन्द्र के कक्षाभेद होने से लम्बन तथा नति का उत्पन्न होने का कारण सिद्ध होता है। चन्द्रग्रहण में लम्बन तथा नति का उत्पन्न होने का कारण सिद्ध होता है। चन्द्रग्रहण में लम्बन तथा नति उत्पन्न नहीं होती क्योंकि समकलकाल में भूभा चन्द्र को आच्छादित करती हुई उस पर लगती है अतः दोनों की एक ही कक्षा होने के कारण पृथ्वी के उपर स्थित सभी स्थानों से चन्द्रमा को समान देखते हैं, क्योंकि वहाँ पर छाद्य चन्द्र तथा छादक भूभा की एक ही कक्षा है। भूभा पूर्वाभिमुख होकर सूर्य की गति तुल्य गति से ही चलती है और चन्द्रमा अपनी स्वगति से चलता है तथा वह भूभा से भी शीघ्रगति से पूर्वाभिमुख गमन करता हुआ भूभा में स्वयं प्रवेश करता है। अतः इस प्रकार उसका चन्द्रग्रहण के समय पूर्व की ओर से स्पर्श होता है तथा भूभा में से बाहर निकलते समय उसके पश्चिम की ओर से मुक्ति होती है। रवि का बिंब बडा होता है तथा पृथ्वी का लघु होता है अतः भूभा सूचिकाकार होती है। वह दीर्घ होने के कारण चन्द्रकक्षा तक होते हुए दूर तक जाती है। उसकी दैर्घ्यता अनुपात से साधित करते है। चन्द्रकक्षा प्रदेश पर भूभा चन्द्र बिम्ब तुल्य होने पर चन्द्रमा का पूर्ण ग्रहण होना प्रतिपादित होता है।

5.6 पारिभाषिक शब्दावली

लम्बन – गर्भीय एवं पृष्ठीय (सूर्य एवं चन्द्र) ग्रह का अन्तर 'लम्बन' कहलाता है। यह तीन प्रकार का होता है।

नति – गर्भीय एवं पृष्ठीय (सूर्य एवं चन्द्र) ग्रहों का शरान्तर 'नति' कहलाता है। यह तीन प्रकार का होता है।

दृग्लम्बन – दृग्वृत्त में स्थित लम्बन दृग्लम्बन कहलाता है।

दर्शान्तकाल – अमावस्यान्त काल।

त्रिभोन – तीन राशि से कम को त्रिभोन कहते है।

दृक्क्षेप – लग्न बिन्दु से ९० अंश की त्रिज्या द्वारा निर्मित वृत्त को दृक्क्षेप कहते हैं।

वित्रिभ - दृक्क्षेपवृत्त में क्रान्तिवृत्त द्वारा उर्ध्वसम्पात को वित्रिभ कहते हैं।

सत्रिभ - दृक्क्षेपवृत्त में क्रान्तिवृत्त द्वारा अध: सम्पात को सत्रिभ कहते हैं।

तरणि – सूर्य।

5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – की उत्तरमाला

1. ख 2. ग 3. ख 4. ख 5. क 6. ख

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) सिद्धान्तशिरोमणि – मूल लेखक – भास्कराचार्य, टीका – कृष्णचन्द्रद्विवेदी।

(ख) सूर्यसिद्धान्त – टिककार – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय।

(ग) सूर्यसिद्धान्त – टिकाकार – महावीरप्रसाद श्रीवास्तव

(घ) ग्रहलाघवम् – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

(ड.) ग्रहलाघवम् - केदारदत्त जोशी

5.9 सहायक पाठ्यसामग्री

सूर्यसिद्धान्त – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

सिद्धान्तशिरोमणि – डॉ0 सत्यदेव शर्मा

ग्रहलाघवम् – टिकाकार- प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

ग्रहलाघवम् – केदारदत्त जोशी

सिद्धान्ततत्वविवेक – मूल लेखक – कमलाकर भट्ट, टिका – कृष्णचन्द्रद्विवेदी।

5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. लम्बन से आप क्या समझते है।
2. नति क्या है?
3. भास्कराचार्य जी के अनुसार लम्बन-नति का प्रयोजन लिखिये।
4. ग्रहण में लम्बन-नति का कारण स्पष्ट कीजिये।
5. लम्बन एवं नति को परिभाषित करते हुए उसका गणितीय साधन कीजिये।
6. लम्बन एवं नति को क्षेत्र द्वारा स्पष्ट कीजिये।
7. ग्रहण में लम्बन एवं नति का क्या महत्व है। स्पष्ट रूप से लिखिये।

खण्ड - 2

चन्द्रश्रृंगोन्नति एवं उदयास्तादि विचार

इकाई - 1 चन्द्रश्रृंगोन्नति विचार

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 श्रृंगोन्नति परिचय

1.4 श्रृंगोन्नति में विशेष

1.5 पारिभाषिक शब्दावली

1.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.8 सहायक पाठ्यसामग्री

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -504 के द्वितीय खण्ड की प्रथम इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – चन्द्रश्रृंगोन्नति परिचय। इससे पूर्व आपने ग्रहण में प्रयुक्त लम्बन एवं नति से जुड़े विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप चन्द्रश्रृंगोन्नति के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

'चन्द्रश्रृंगोन्नति' का सम्बन्ध ग्रहण के अन्तर्गत चन्द्रमा की स्थिति से है। इसके ज्ञान से ज्योतिष शास्त्रानुरागियों को ग्रहण एवं चन्द्रश्रृंगोन्नति का सम्यक् ज्ञान हो सकेगा।

आइए इस इकाई में हम लोग 'चन्द्रश्रृंगोन्नति' के बारे में उसकी गणितीय पक्ष एवं सिद्धान्तों को जानने का प्रयास करते है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- चन्द्रश्रृंगोन्नति को परिभाषित कर सकेंगे।
- चन्द्रश्रृंगोन्नति को समझा सकेंगे।
- 'चन्द्रश्रृंगोन्नति' में चन्द्रमा की विभिन्न स्थितिर्यों को जान लेंगे।
- ग्रहण में चन्दश्रृंगोन्नति का महत्व प्रतिपादित कर सकेंगे।

1.3 चन्द्रश्रृंगोन्नति परिचय

चन्द्रश्रृंगोन्नति का सम्बन्ध आकाशस्थ चन्द्रमा की स्थिति से है। श्रृंग का अर्थ यहाँ सींघ के समान से लिया गया है। आकाश में शुक्ल पक्ष के अन्तर्गत चन्द्रमा का बिम्ब बढ़ते हुए दिखलाई पड़ता है तथा अन्तिम तिथि पूर्णिमा को पूर्णबिम्ब दिखाई देता है। वहीं कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा की कला घटते हुए दिखलाई पड़ता है और अन्तिम तिथि अमावस्या को चन्द्रमा कलाहीन होकर अदृश्य हो जाता है अर्थात् हमें भूसापेक्ष उसके दर्शन नहीं हो पाते। शुक्ल पक्ष में प्रतिपदा से सार्द्धसप्तमी तिथि तक चन्द्रमा हमें श्रृंगवत् दिखलाई पड़ता है। फिर उसका आकार अर्धगोलमेव हो जाता है। इसी तरह पूर्णिमा तिथि को वह हमें बिल्कुल गोल दिखलाई पड़ता है।

शुक्ल पक्ष के आरम्भ में अथवा कृष्ण पक्ष के अन्त में चन्द्रमा के प्रकाशित या शुक्ल भाग का आकार श्रृंग (सींघ) की तरह होता है और उत्तर या दक्षिण की तरफ उठा रहता है। चन्द्रमा के आधे से अल्प शुक्ल (श्वेत) भाग की कोटी (उपरी भाग) श्रृंगाकार होता है, तब वहाँ इष्टकाल पर कितनी श्रृंगोन्नति होगी? यह ज्ञान का विषय है। चन्द्रमा का श्रृंगाकार भाग शुक्ल भाग के आधे से

अल्प भाग में होता है। यह मासान्तपाद व प्रथम पाद में चन्द्र के आधे से अल्प शुक्ल भाग में संभव होता है। द्वितीय तथा तृतीय (चरण) पाद में ब्रह्मगुप्तादि ने कृष्ण श्रृंगोन्नति साधित की है, उससे आचार्य भास्कराचार्य सहमत नहीं है। वे कहते हैं कि कृष्ण श्रृंगोन्नति मनुष्यों के नेत्रों से दृश्य नहीं होती अत: शुक्ल श्रृंगोन्नति ही प्रसिद्ध है। अत: आचार्य ने मासान्त पाद व प्रथम पाद के लिए कहा है। द्वितीय तृतीय पाद में चन्द्र बिम्बार्ध कृष्ण होने से वहाँ कृष्ण श्रृंगोन्नति होती है। सूर्यास्त के पश्चात् जितनी घटी में चन्द्र अस्त होता है वह गत घटी है तथा सूर्यास्त से जितनी घटी पहले चन्द्रास्त होता है वह ऐष्य घटी है। इसी प्रकार पूर्व क्षितिज में सूर्योदय से गत एवं ऐष्य घटी होती है।

चन्द्रशङ्क्वर्थम् –

मासान्तपादे प्रथमेऽथवेन्दो: श्रृंगोन्नतिर्यद्दिवसेऽवगम्या।
तदोदयेऽस्ते निशि वा प्रसाध्य: शंकुर्विधो: स्वोदितनाडिकाद्यै:।।

अर्थात् मासान्त पाद अर्थात् चतुर्थ पाद (अर्थात् कृष्णपक्ष की अष्टमी से आगे) अथवा प्रथम पाद (अर्थात् शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से आगे अष्टमी तिथि तक) में से किसी भी अभीष्ट दिवस को जब चन्द्र श्रृंगोन्नति ज्ञात करनी हो तब उस मास पाद के उस अभीष्ट दिवस की रात्रि में सूर्योदय अथवा सूर्यास्त के समय अथवा रात्रि के किसी भी समय पर चन्द्र स्पष्ट करें। प्रथम चरण में उनसे अस्त काल में श्रृंगोन्नति ज्ञात करें, इसी प्रकार रात्रि में किसी समय पर तथा मासान्त पाद के उदयकाल पर चन्द्रमा की श्रृंगोन्नति साधन करना चाहिये। उदय से अभीष्ट घटी तुल्य काल अथवा जब अस्त हो वहाँ से उपर इष्ट घटी काल पर श्रृंगोन्नति साधित करना चाहिये।

चन्द्रमा के शुक्लत्व व कृष्णत्व के कारण –

तरणिकिरणसंगादेष पीयूषपिण्डो दिनकरदिशि चन्द्रश्चन्द्रिकाभिश्चकास्ति।
तदितरदिशि बालाकुन्तलश्यामलश्रीर्घट इव निजमूर्तिच्छाययैवातपस्थ:।।
सूर्यादध: स्थस्य विधोरध:स्थमर्धं नृदृश्यं सकलासितं स्यात्।
दर्शेऽथ भार्धान्तरितस्य शुक्लं तत् पौर्णमास्यां परिवर्तनेन।।
कक्षाचतुर्थे तरणेर्हि चन्द्रकर्णान्तरे तिर्यगिनो यतोऽब्जात्।
पादोनषट्काष्ट लवान्तरेऽतो दलं नृदृश्यस्य दलस्य शुक्लम्।।
उपचितिमुपयाति शौक्ल्यमिन्दोस्त्यज्त इनं व्रजतश्च मेचकत्वम्।
जलमयजलजस्य गोलकत्वात् प्रभवति तीक्ष्णविषाणरूपतास्य।।
यद्याम्योदक् तपनशशिनोरन्तरं सोऽत्र बाहु:।
कोटिस्तूर्ध्वाधरमपि तयोर्यच्च तिर्यक् स कर्ण:।।

दोर्मूलेऽर्कः शशिदिशि भुजोऽग्राच्चकोटिस्तदग्रे।
चन्द्रः कर्णो रविदिगनया दीयते तेन शौक्ल्यम्।।

अर्थात् सूर्य की किरणों के संयोग से धवलकान्ति अमृतमय चन्द्रमा का सूर्य की तरफ का भाग चन्द्र की चान्दिनी (प्रकाश) से जगमगाता है। उसके (चन्द्र) इससे विपरीत दिशा में रमणीय रमणी के शिर के श्याम वर्ण के केशों की श्यामलता के सदृश्य चन्द्रमा श्याम रंग का दिखाई देता है। यहाँ रमणी के शिर की छाया को श्यामलता भी कही है। सूर्य के नीचे (कक्षा में) स्थित चन्द्रमा का आधा भाग मनुष्यों को अदश्य होता है क्योंकि वहाँ अंधेरा रहता है और चन्द्रमा का आधा भाग ही दृश्य होता है जो पूर्णिमा से परिवर्तित होने लगता है। सूर्य से जब चन्द्रमा अपनी कक्षा के चतुर्थ भाग तुल्य स्थान पर चन्द्र कर्णान्तर दूरी पर होता है तब सूर्य से लम्बवत् होता है। उस समय चन्द्र गोल के आधे भाग का आधा भाग अर्थात् दृश्य चतुर्थांश भाग (८५/४५) भाग मनुष्यों को शुक्ल दिखाई देता है।
जलज होने से जलमय चन्द्रमा के बिम्ब की सूर्य के सामने होकर दूर आगे जाते हुए सूर्य की तीक्ष्ण किरणों से शुक्लता तथा समीप जाते हुए कृष्णता में वृद्धि होती है। सूर्य तथा चन्द्रमा का याम्योत्तर अन्तर यहाँ बाहु है, उनका उर्ध्वाधर अन्तर कोटि है इनका जो तिर्यक अन्तर है वह कर्ण है। भुज के मूल में सूर्य चन्द्र दिशा में भुजाग्र और कोटि के अग्रभाग (तक) के कर्ण मार्ग से शुक्लता देता है।

मृदातत्व एवं जलतत्व के योग से बने हुए चन्द्र बिम्ब पर सूर्य किरणों के संयोग से पक्षादि और मासान्त में शुक्ल भाग की आकृति दो सींगों जैसी होती है। पक्षादि में चन्द्र के दोनों श्रृंगों के नत एवं उन्नत होने का फल संहितादि ग्रन्थों में भी प्राप्त होता है।

सूर्यसिद्धान्तोक्त चन्द्रमा का सूर्यसान्निध्य के कारण दृश्यादृश्य कथन –

उदयास्त विधिः प्रागवत् कर्तव्यः शीतगोरपि।
भागैर्द्वादशभिः पश्चाद् दृश्यः प्राग्यात्यदृश्यताम्।।

पश्चिम दिशा में चन्द्र का अस्त लग्न एवं पूर्व दिशा में उदय लग्न बनाकर 'ततोलग्नान्तर प्राणाः कालांशाः षष्टिभाजिताः' इत्यादि पद्य में कथनानुसार चन्द्रमा के भी उदयास्त कालांश का साधन करना चाहिये। चन्द्रमा १२ कालांश से पश्चिम दिशा में उदित तथा १२ कालांश से ही पूर्वदिशा में अस्त होता है। अर्थात् जब चन्द्र सूर्य से १२ अंश आगे चला जाता है तो पश्चिम दिशा में उदय होता है एवं सूर्य से पीछे १२ अंश के भीतर अन्तर होने पर चन्द्रमा पूर्व दिशा में अस्त होता है।
चन्द्रबिम्ब में स्वयं का प्रकाश नहीं होने से अपने दृष्टि स्थान से चन्द्र बिम्ब की परिधि को छूकर जाने वाली दो स्पर्श रेखाओं के करने से अर्धाल्प ही चन्द्र बिम्ब का भाग दृश्य होता है, वहाँ उस से ऊपर के स्थान में स्थित होने वाले सूर्य बिम्ब की किरणों के संयोग होने से जब चन्द्र बिम्ब में शुक्लारम्भ

होता है तो उसे ही चन्द्र बिम्ब का उदय कहते हैं। जब चन्द्र बिम्ब में शुक्ल का परम अभाव हो तो चन्द्रास्त होता है। जब सूर्य और चन्द्र दोनों राश्यादि में समान होते हैं तो एक ही दृष्टि सूत्र में गये हुए होने से सूर्यकक्षा के नीचे भाग में स्थित चन्द्रकक्षा में चन्द्र बिम्ब होने से हमारे दृश्यभाग में ऊपर की ओर स्थित सूर्यकिरणों के संयोग के अभाव होन से चन्द्रबिम्ब में शुक्लाभाव होता है, और वह समय अमान्तकाल होता है। तभी चन्द्र अस्त होता है। उसी समय से शीघ्र गति के कारण से चन्द्र बिम्ब पूर्व दिशा में चलता हुआ जब सूर्य से आगे स्थित होता है तो प्रतिपदा तिथि के अन्त एवं द्वितीयातिथि के प्रारम्भ में चन्द्र बिम्ब के हमारी आँखों द्वारा दृश्य भाग पर सूर्य किरणों के संयोग के कारण से शुक्लारम्भ होता है उसे ही 'चन्द्रोदय' कहते है। इस तरह प्रतिपदा तिथि के दिन के बाद शीघ्रगति वाले चन्द्र बिम्ब का सूर्य बिम्ब से अन्तर बढ़ते जाने के कारण ३० तिथियों में चन्द्र बिम्ब पुन: सूर्यबिम्ब के साथ योग कर लेता है। ३० तिथियों में सूर्यचन्द्रान्तर ३६० अंश हो जाता है। अत: जब ३० तिथियों में सूर्य चन्द्रान्तर ३६० अंश होता है तो १ तिथि में क्या? इस अनुपात से प्रतिपदान्त में चन्द्रोदयकाल में सूर्यचन्द्रान्तर $= \frac{३६०^\circ \times १}{३०} = १२^\circ$ अंश होते हैं।

अत: सूर्य से १२ अंश के अन्तर पर चन्द्र के रहने पर प्रतिपदा के अन्त में पश्चिम दिशा में चन्द्रोदय एवं सूर्य से १२ अंश पीछे चन्द्र बिम्ब के रहने पर चतुर्दशी तिथि के अन्त में चन्द्रास्त पूर्व दिशा में होता है, इससे स्पष्ट होता है।

इच्छित दिन में सूर्यास्त के पश्चात् चन्द्रास्त काल का प्रमाण –

रवीन्द्वो: षड्भयुतयो: प्रागवल्लग्नान्तरासव:।
एकराशौ रवीन्द्वोश्च कार्याविवर लिप्तिका:।।
तन्नाडिकाहते भुक्ती रीवन्द्वो: षष्टिभाजते।
तत्फलान्वितयोर्भूय: कर्तव्याविवरासव:।।
एवं यावत् स्थिरीभूता रवीन्द्वोरन्तरासव:।
तै: प्राणैरस्तमेतीन्दु: शुक्लेऽर्कास्तमयात् परम्।।

अर्थात् शुक्ल पक्ष में जिस दिन सूर्यास्त के बाद चन्द्रास्त का समय जानता हो उस दिन पश्चिमी क्षितिज का सूर्य एवं चन्द्र का अस्तकालिक लग्न बनाकर ६ राशि जुड़े हुए अस्तकालिक सूर्यचन्द्र एवं लग्न दोनों के पूर्व के समान ही भुक्तासून्नकस्याथे इत्यादि के अनुसार सूर्य एवं लग्न के अन्तराल में आने वाले अन्तरासुओं के समान ही सूर्यचन्द्र एवं लग्न के अन्तरासु का साधन करना चाहिये। यदि सूर्य एवं चन्द्र दोनों एक ही राशिगत हों तो उन दोनों सूर्य एवं चन्द्र में ६ राशि जोड़कर अन्तरासु का साधन करना चाहिये। नाड़ीवृत्त में उन सूर्य एवं चन्द्रान्तर की कलायें अथवा अन्तरासु बनावें। अर्थात् १८०० कला में उस राशि का उदयासुमान प्राप्त होता है तो सूर्य एवं चन्द्र की अन्तरकलाओं

में क्या? इस अनुपात से नाड़ीवृत्त में सूर्य एवं चन्द्रमा के अन्तर असु होंगे। सूर्य एवं चन्द्र की पृथक्-2 कालात्मिका गति को उन दोनों के अन्तरासुओं की घटी बनाकर गुणा करें उसमें ६० का भाग दें भागफल उन दोनों के सूर्य एवं चन्द्र का चालनफल होता है। उन दोनों में अलग-अलग अपने-अपने फल को जोड़े, पुन: उन सूर्य चन्द्र एवं लग्न में ६ राशि जोड़े बार-बार उनके अन्तरासु बनावें। इस तरह तब तक करें जब तक कि सूर्य एवं चन्द्र के अन्तरासु स्थिर न हो जायें। उन स्थिर हुए सूर्यचन्द्रन्तरासुओं से शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा सूर्यास्त के बाद क्षितिज के सान्निध्य में आने के कारण पश्चिम में अस्त हो जाता है।

सूर्यास्त के बाद में चन्द्रास्त काल सूर्यास्तकालिक सूर्य एवं चन्द्र का साधन करके, चन्द्रमा में आयन एवं आक्ष दोनों दृककर्मों का संस्कार से चन्द्रास्त लग्न का साधन कर सूर्यचन्द्रास्त लग्न के असुओं के अन्तर करने के विधान से ज्ञात कर सकते हैं। ये सब उदयास्त लक्षणों को जानने वाले विद्वानों के सामने स्पष्ट ही है। लेकिन पश्चिम दिशा में जो राशि जितने समय में अस्त होती है उससे सातवीं राशि उतने ही समय में उदित होती है। इसलिए आचार्य ने सूर्य चन्द्र एवं अस्तकालिक लग्न में ६ राशि जोड़कर सूर्यचन्द्रास्तलग्नकालिक अन्तरासुओं का साधन किया है।

कृष्णपक्ष में सूर्यास्त के पश्चात् चन्द्रोदयकाल ज्ञान –

भगणार्धं रवौ दत्वा कार्यास्तद् विवरासव:।
तै: प्राणै: कृष्णपक्षे तु शीतांशुरूदयं व्रजेत्।।

अर्थात् यदि कृष्ण पक्ष में चन्द्रोदय का समय जानने की इच्छा हो तो सूर्यास्त काल के समय के सूर्यस्पष्ट में ६ राशि जोड़कर अस्त लग्न का ज्ञान करना चाहिये। उस अस्त लग्न एवं चन्द्र के अन्तर के असु पूर्वोक्त विधि से ही साधन करने चाहिये। सूर्यास्त के बाद उस अन्तरासु तुल्य समय व्यतीत होने पर चन्द्रोदय होगा।

कृष्ण पक्ष में सूर्यास्त के पश्चात् चन्द्रमा क्षितिज से नीचे गया हुआ ही होता है। सूर्यास्त काल के समय स्पष्ट सूर्य में ६ राशि जोड़ने पर अस्तलग्न होता है। अस्त लग्न के उदय के समय से लेकर अस्तलग्न एवं चन्द्रान्तर के असुओं से चन्द्रोदय होगा ही यह उत्पन्न होता है।

चन्द्रश्रृंगोन्नति ज्ञान के लिए भुजकोटिकर्ण साधन –

अर्केन्द्वो: क्रान्ति विश्लेषो दिक्साम्ये युतिरन्यथा।
तज्ज्येन्दुरर्काद्यत्रासौ विज्ञेया दक्षिणोत्तरा।।
मध्याह्नेन्दु प्रभाकर्ण संगुणा यदि सोत्तरा।
तदार्कघ्नाक्षजीवायां शोध्या योज्या च दक्षिणा।।
शेषं लम्बज्यया भक्तं लब्धो बाहु: स्वदिंगमुख:।
कोटि: शंकुस्तयोर्वर्गयुतेर्मूलं श्रुतिभवेत्।।

अर्थात् सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों एक ही अयन में स्थित हो तो उन सूर्य एवं चन्द्र दोनों की क्रान्तिज्या का अन्तर करें तथा दोनों यदि अलग-अलग अयन में हो तो उन दोनों की क्रान्तिज्या को जोड़े। उस होने

वाले अन्तर या योग को सर्वज्या के रूप में जानना चाहिये।यह सूर्य एवं चन्द्र की क्रान्तिज्यान्तर या योग सूर्य से जिस दिशा में चन्द्रमा होगा उस दिशा की दक्षिण या उत्तर की जाननी चाहिये। इसका आशय है कि क्रान्ति संस्कार ज्या चन्द्रमा की दिशा की होती है। वह क्रान्ति संस्कारज्या सूर्यचन्द्र की क्रान्तज्यान्तर या योग को अहोरात्र का मध्याह्न अर्थात् सूर्यास्त काल के समय के चन्द्रमा की छाया कर्ण से गुणा करें। यदि वह उत्तर की हो तो इसे अक्षज्या × १२ के गुणनफल में से घटावें तथा दक्षिण की हो तो उस गुणनफल को अक्षज्या × १२ के गुणनफल में जोड़े। इस तरह गुणनफल में से घटाने या जोड़ने पर जो हो उसमें लम्बज्या का भाग दें। ९० अंश – अक्षांश = लम्बांश। इन लम्बांशों की ज्या लम्बज्या। भागफल जो आए वह चन्द्र की दिशा अर्थात् सूर्य से चन्द्रमा जिस दिशा में हो उस दिशा की भुज होती है। १२ अंगुल का शंकु कोटि होती है। २ $\sqrt{\text{भुज}^{२} + \text{कोटि}^{२}}$ = वर्गमूल = कर्ण होता है।

अभ्यास प्रश्न –

1. श्रृंग का अर्थ है –
   क. श्रृंगार ख. सींघ के समान ग. श्रृगाल घ. श्रृंग
2. निम्न में श्रृंगोन्नति का सम्बन्ध किससे है –
   क. सूर्य से ख. चन्द्र से ग. भौम से घ. बुध से
3. शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा किस तिथि तक हमें श्रृंगवत् दिखलाई पड़ता है –
   क. सार्द्ध सप्तमी तक ख. पंचमी तक ग. अष्टमी तक घ. दशमी तक
4. ९०° - अक्षांश = ?
   क. विषुवांश ख. लम्बांश ग. भुजांश घ. क्रान्त्यंश
5. चन्द्रमा कितने कालांश पर पश्चिम दिशा में उदित होता है।
   क. १२ ख.१४ ग.१६ घ.३०
6. चन्द्रमा किस दिशा में अस्त होता है।
   क. पूर्व ख. पश्चिम ग. उत्तर घ. दक्षिण
7. भगण का मान कितना होता है।
   क. ३६० अंश ख. ६० अंश ग. १२० घ. कोई नहीं
8. सूर्य से चन्द्रमा जिस दिशा में हो उस दिशा की क्या होती है।
   क. भुज ख. कोटि ग. कर्ण घ. व्यास

शुक्लता में आधे से कम चन्द्र बिम्ब के होने पर मासादि में पश्चिमी क्षितिज के लगभग और मासान्त में पूर्वक्षितिज के लगभग शृङ्गोन्नति साधन करने की प्रक्रिया सही है। लेकिन संहिताकारों द्वारा मास के प्रारम्भिक चतुर्थ भाग में ही शृङ्गोन्नति के फल का कथन किये जाने के कारण सूर्यांशुपुरुष ने भी सूर्यास्त काल में पश्चिम क्षितिज के आसन्न चन्द्र होने पर शृङ्गोन्नति साधन के लिए भुज कोटि कर्ण साधन किये हैं। इसीलिए यहाँ ''मध्याह्नेन्दु प्रभाकर्ण सङ्गुणा'' लिखा है। उन्होंने सूर्य एवं चन्द्र दोनों को एक ही याम्योत्तर वृत्त में समानान्तर धरातल में मानकर लघुच्छाया कर्ण के गोल की भुजादि साधन की बात कही है।

सूर्यास्त काल में सूर्य के अस्त क्षितिज पर होने के कारण शङ्कु एवं शङ्कुतल दोनों का ही अभाव होने के कारणसे उस की अग्रा के समान ही शङ्कु मूल तथा पूर्वापर सूत्रान्तररुप सूर्य भुज, सूर्यक्रान्तिज्या ही होती है। लम्बज्या–त्रिज्या–अक्षज्या इस अक्ष क्षेत्र का क्रान्तिज्या–अग्र–कुज्या इस अक्ष क्षेत्र के समान होने से अनुपात करने से—

$$\text{अग्रा} = \frac{\text{त्रिज्या} \times \text{सूर्यक्रान्तिज्या}}{\text{लम्बज्या}} = \text{सूर्यभुज है।}$$

चन्द्र के क्षितिज से ऊपर होने से शङ्कु–शङ्कुतल दोनों के ही होने के कारण चन्द्र की अग्रा एवं शङ्कुतल इन दोनों के संस्कार से भुज होता है। तब चन्द्राग्रा

$$= \frac{\text{त्रिज्या} \times \text{चन्द्रक्रान्तिज्या}}{\text{लम्बज्या}} \text{।}$$

$$\text{चन्द्र शङ्कुतलम्} = \frac{\text{अक्षज्या} \times \text{शङ्कु}}{\text{लम्बज्या}} \text{।}$$

$$\text{इन दोनों के संस्कार से चन्द्रभुज} = \frac{\text{अन्तरज्या} \times \text{शङ्कु} \mp \text{त्रिज्या} \times \text{चन्द्रक्रान्तिज्या}}{\text{लम्बज्या}} \text{।}$$

सूर्य एवं चन्द्र द्रानों के भुज एक ही दिशा के होने से उनके अन्तर करने पर तथा अलग–अलग दिशाओं के होने पर उनका योग करने से सूर्य एवं चन्द्र दोनों के याम्योत्तर अन्तर स्वरुप चन्द्र की स्पष्ट भुज = स्पभुज =

$$\frac{\text{ज्याअन्तर} \times \text{शङ्कु} \mp \text{त्रिज्या} \times \text{चन्द्रक्रान्तिज्या} \mp \text{त्रिज्या} \times \text{सूर्य क्रा.ज्या}}{\text{लम्बज्या}}$$

$$= \text{अन्तरज्या} \times \text{शं} \pm \frac{\text{त्रि}(\text{चन्द्रक्रान्तिज्या} \mp \text{सूर्यक्रान्तिज्या})}{\text{लम्बज्या}} \text{।}$$

लेकिन यह भुज; एवं चन्द्रमा की शङ्कु रुप कोटि होने पर उनका अनुपात करने से १२ कोटि में छायाकर्णगोल की भुज

CS Scanned with CamScanner

$$= \frac{१२ \times अन्तरज्या \times शङ्कु \mp त्रिज्या(चन्द्रक्रान्तिज्या \mp सूर्य क्रान्तिज्या) \times १२}{शङ्कु \times लम्बज्या}$$ ।

यहाँ द्वितीय खण्ड में $\frac{त्रिज्या \times १२}{शङ्कु}$ = छायाकर्ण। तथा प्रथम खण्ड में तुल्य हर एवं गुणों का नाश करने पर कर्णगोलीय स्पष्ट भुज —

$$\frac{१२ \times अन्तरज्या \mp (चन्द्रक्रान्तिज्या \mp सूर्य क्रान्तिज्या) छायाकर्ण}{लम्बज्या}$$ ।

यहाँ सूर्य एवं चन्द्र दोनों एक ही उत्तरायण में होने पर यदि सूर्य क्रान्ति से चन्द्रक्रान्ति कम हो तब सूर्य से चन्द्र दक्षिण में होता है, अतः दक्षिण होने से प्रथम खण्ड में धन करें। यदि सूर्य क्रान्ति से चन्द्र क्रान्ति अधिक हो तो चन्द्र सूर्य से उत्तर में होता है अतः द्वितीय खण्ड उत्तर में होने से प्रथम खण्ड में ऋण तथा सूर्य चन्द्र दोनों एक ही दक्षिणायन में हो तथा सूर्य क्रान्ति चन्द्र क्रान्ति से अधिक हो तो सूर्य से उत्तर में चन्द्र होता है, अतः वहाँ प्रथम खण्ड में द्वितीय खण्ड को ऋण करते हैं। यदि सूर्य क्रान्ति से चन्द्र क्रान्ति अधिक हो तो सूर्य से चन्द्र दक्षिण में होता है अतः प्रथम खण्ड में द्वितीय खण्ड को जोड़ा जाता है।

सूर्य से चन्द्र जिस दिशा में हो उसी दिशा की भुज होती है। इसीलिए सूर्य चन्द्र के एक ही अयन गत होने से क्रान्त्यन्तर तथा भिन्न दिशा के होने पर उन दोनों का योग इस तरह से क्रान्तिसंस्कार भी सूर्य एवं चन्द्र दोनों के दक्षिणोत्तरात्तरांश ज्ञान के लिए उचित है। सूर्यांशु पुरुष द्वारा कहा गया यह भुज छाया कर्ण गोलवृत्तीय होने से १२ अङ्गुल का शङ्कु ही कोटि होता है। अतः $\sqrt{भुज^2 + कोटि^2}$ = कर्ण लघु क्षेत्र में कल्पित किये गये सूर्य एवं चन्द्र बिम्बों का केन्द्रान्तर होता है यह सभी स्पष्ट है।

विशेष— वास्तविक रूप से अपने–अपने गोल में स्थित सूर्य एवं चन्द्र बिम्बों का केन्द्रान्तर जो होता है वही शृङ्गोन्नति साधन योग्य कर्ण होता है। उसे जानने के लिए सूर्य एवं चन्द्र दोनों के केन्द्रगत पूर्वापर समानान्तर दोनों के धरातलों से जो लम्ब रूप याम्योत्तरान्तर होता है उसमें उन दोनों के क्रान्तिज्या संस्कार के समान क्षितिज पर भुज होता है। उन दोनों सूर्य एवं चन्द्र बिम्बों के केन्द्रगत याम्योत्तरवृत्त के समानान्तर धरातलों पर लम्ब रुप पूर्वापरान्तर कोटि होता है। इन दोनों $\sqrt{भुज^2 + कोटि^2}$ = कर्ण। अर्थात् शङ्कुमूलान्तर कर्ण होता है। यही कर्ण (शङ्कु एवं मूलान्तर रुप) वास्तविक भुज होता है। तथा सूर्यास्त के समय

CS Scanned with CamScanner

सूर्यशङ्कु के अभाव होने के कारण केवल चन्द्र शङ्कु (सूर्य एवं चन्द्र केन्द्रगत–गर्भक्षितिज समानान्तर दोनों धरातलों के लम्बरुप) अन्तर कोटि होता है। इन दोनों $\sqrt{\text{भुज}^2 + \text{कोटि}^2}$ = कर्ण= सूर्यचन्द्र केन्द्रान्तर वास्तविक कर्ण होता है। इसकी विस्तार से जानकारी के लिए ''वास्तव चन्द्रशृङ्गोन्नति साधन में वर्णन देख सकते हैं।

Scanned with CamScanner

चन्द्र बिम्ब में शुक्लांगुल साधन –

सूर्योनाशीतगोर्लिप्ता: शुक्लं नवशतोद्धुता:।
चन्द्रबिम्बांगुलाभ्यस्तं हृतं द्वादशभि: स्फुटम्।।

अमावस्या की समाप्ति के समय सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों राशि/अंश/क./वि. में बराबर होने के कारण उनमें अन्तर का अभाव होता है जिससे चन्द्र बिम्ब में शुक्लता का भी अभाव होता है। पूर्णिमा की समाप्ति के समय सूर्य एवं चन्द्र में ६ राशि का अन्तर होता है। उस समय सारा चन्द्र बिम्ब शुक्ल होता है। मध्यम मान से चन्द्र बिम्ब मान १२ अङ्गुल होता है। अतः मध्य में अनुपात से मध्यम शुक्लाङ्गुल लाते हैं। जिसे जानने के लिए — यदि ६ राशि सूर्य एवं चन्द्र का अन्तर होने पर १२ अङ्गुल चन्द्र बिम्ब शुक्ल होता है तो इष्ट समय के सूर्य एवं चन्द्र की अन्तर कलाओं में क्या? मध्यमशुक्लाङ्गुल =

$$= \frac{\text{१२×सूर्य चन्द्रान्तरकला}}{\text{६ राशि × १८००}} = \frac{\text{१२×सूर्य चन्द्रान्तरकलाः}}{\text{१०८०० कला}} = \frac{\text{सूर्य चन्द्रान्तरकलाः}}{\text{९०० कला}}।$$

यह मध्यम शुक्लाङ्गुल मध्यमबिम्ब (१२ अङ्गुल चन्द्र बिम्ब मानकर) साधित किया है। परन्तु अपेक्षा स्पष्ट बिम्बमान के शुक्ल साधन की है। उसके साधन करने के लिए— यदि १२ अङ्गुल के चन्द्र बिम्ब से ये मध्यम शुक्लाङ्गुल प्राप्त होता है तो इष्ट चन्द्र बिम्ब में क्या? इस अनुपात से स्पष्ट अङ्गुलादि शुक्ल

$$= \frac{\text{मध्यमशुक्लमान × स्पष्ट चन्द्र बिम्बाङ्गुलात्मक मान}}{\text{१२}} = \text{वास्तविक स्पष्ट}$$

शुक्लम्। यह सूर्यसिद्धान्त में कहा गया शुक्लाङ्गुलानयन सिद्ध हुआ।

यहाँ यदि चन्द्र को भी क्रान्तिवृत्त में गया हुआ मानें तो सूर्य एवं चन्द्रमा के स्थानीय अन्तरवश से शुक्लाङ्गुल लाया जा सकता है परन्तु चन्द्रमा के क्रान्तिवृत्त से शरान्तर तुल्य दूरी पर अपने विमण्डलवृत्त में भ्रमण करने के कारण से स्थानीय अन्तर से वास्तविक शुक्लाङ्गुल लाना उपयुक्त नहीं है। क्योंकि सूर्य एवं चन्द्र का केन्द्र प्रोतवृत्त ही चन्द्र केन्द्र एवं उसका शुक्ल भी होता है। अतः सितवृत्तीयअन्तर से ही शुक्लाङ्कगुलानयन उपयुक्त है। उसको जानने के लिए भट्ट कमलाकर द्वारा कहे गये शृङ्गोन्नति साधन में सितवृत्तीय अन्तरांश विधि देखें।

Scanned with CamScanner

श्रृंगोन्नति प्रदर्शनार्थ परिलेख ज्ञान -

दत्वाऽर्कसंज्ञितं बिन्दुं ततो बाहुं स्वदिंगमुखम्।
ततः पश्चान्मुखीं कोटिं कर्णं कोट्यग्रमध्यमाम्।।
कोटिकर्णयुताद् बिन्दोर्बिम्बं तात्कालिकं लिखेत्।
कर्णसूत्रेणदिक्सिद्धिं प्रथमं परिकल्पयेत्।।
शुक्लं कर्णेन तद्बिम्ब योगादन्तर्मुखं नयेत्।
शुक्लाग्रयाम्योत्तरयोर्मध्ये मत्स्यौ प्रसाधयेत्।।
तन्मध्यसूत्रसंयोगाद् बिन्दुत्रिस्पृग् लिखेद् धनुः।
प्राग् बिम्बं यादृगेव स्यात् तादृक् तत्र दिने शशी।।
कोट्या दिक्साधनात् तिर्यक् सूत्रान्ते श्रृंगमुन्नतम्।
दर्शयेदुन्नतां कोटिं कृत्वा चन्द्रस्य साऽऽकृतिः।।

इच्छानुसार दिन चन्द्र शृङ्ग दिखाने के लिए पट्टिका आदि में सूर्य द्योतक बिन्दु लिखकर, उस सूर्य द्योतक बिन्दु से गणित से आयी हुई स्पष्ट भुज को दिशा के अनुसार देकर, वहाँ से भुजाग्र बिन्दु से पश्चिमाभिमुखी कोटि देकर कोटि का अग्र भाग एवं सूर्य द्योतक बिन्दु पर होकर जाने वाली रेखा जो कर्ण के रूप में होती है, वह सूर्य एवं कोटि के शीर्ष पर संलग्न होती है वह करनी चाहिए। उसके बाद कोटि एवं कर्ण की युति जहाँ होती है उस बिन्दु से "तात्कालिक चन्द्र बिम्ब की अर्ध त्रिज्या लेकर चन्द्र का तात्कालिक बिम्ब बनाना चाहिए। उस बिम्ब में प्रथम पहले से ही दिये गये कर्ण सूत्र से दिशा की परिकल्पना करनी चाहिए। अर्थात् "कोट्यग्रमध्य पर जाने वाला "कर्ण सूत्र लिखित चन्द्रबिम्ब में पूर्वापरा एवं उस पर चन्द्रकेन्द्र पर जाने वाली लम्ब रेखा को याम्योत्तरा जानें। कर्ण के साथ उस बिन्दु का जहाँ योग हो उस स्थान से बिम्ब केन्द्र की ओर गणित से आये हुए अङ्गुलादि शुक्ल देने चाहिए। वहाँ से शुक्लाग्र बिन्दु से याम्योत्तर दोनों रेखाओं के बीच में दो मत्स्याकार बनाने चाहिए। जिनमें एक मत्स्य शुक्लाग्र एवं याम्योत्तर बिन्दु पर जाने वाला तथा दूसरा शुक्लाग्रा एवं उत्तर बिन्दु पर जाने वाला होना चाहिए। उन दोनों मत्स्यों के मुख एवं पुच्छ पर से निकलने वाले जो दोनों मध्य सूत्र हैं, उनका जहाँ योग हों उस योग बिन्दु के अर्थात् केन्द्र से दक्षिणी–उत्तरी तथा शुक्लाग्र इन तीनों बिन्दुओं पर जाने वाला एक चाप बनावें। उस चाप से वह चन्द्र बिम्ब जितना पूर्वी भाग में हो उतना ही उस दिन आकाश में चाँद दिखाई देता है।

अब उन्नत शृङ्ग बताते हैं— कोटिरेखा से दिशा साधन से उस के ऊपर जो तिरछा सूत्र हो उस के अन्त में कोटि को उन्नत कर उस उन्नत की दिशा में शृङ्ग दिखाना चाहिए। इसका आशय है कि कोटिरेखा को पूर्वापरा मानकर उस पर लम्ब रेखा को याम्योत्तरा मानकर उसके अन्त में भुज की मूल दिशा में उत्तर में या दक्षिण में कोटि रेखा को उन्नत कर के विद्वान् को उन्नत शृङ्ग दिखाना चाहिए। इसी तरह आकाश में जैसे शुक्लांश दिखाई देता है वही चन्द्र की आकृति उस दिन होती है।

CS Scanned with CamScanner

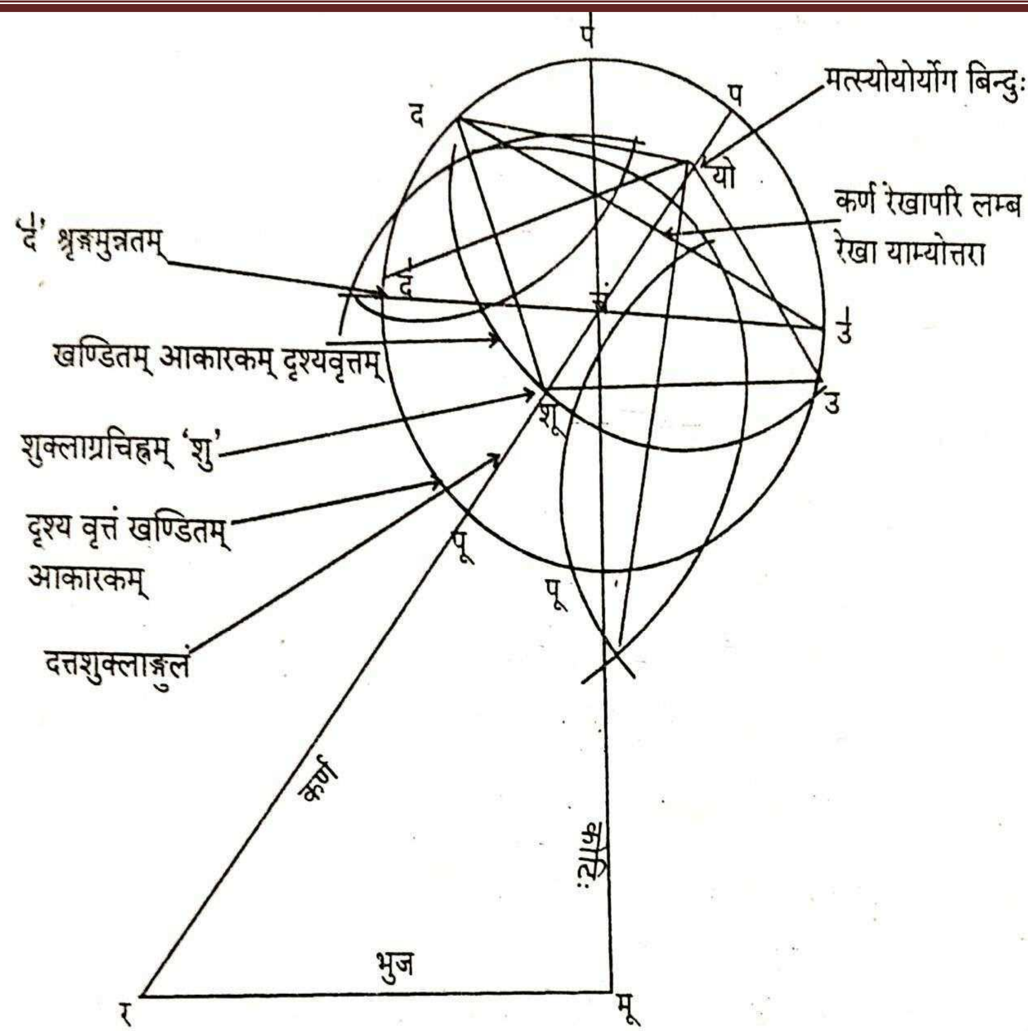

र=सूर्यकेन्द्रम्। र मू = स्पष्ट भुजः। मू=भुजाग्रम=कोटिमूलम्। चंमू = चन्द्रशङ्कुः = कोटिः। $\sqrt{\text{भुज}^2 + \text{कोटि}^2}$ = कर्ण = रं च। 'र' कर्णस्य मध्यबिन्दुतः 'चं' = कोट्यग्रगतम् = र चं = कर्णः = सूर्यचन्द्रयोः केन्द्रान्तरम्।

Scanned with CamScanner

यहाँ इस क्षेत्र में द = श्रृंगमुन्नतम्। तत् श्रृंगं मू बिन्दुत: कोटिमूलात् र अर्थात् सूर्यदिग्गतं भवति।

आधे से कम शुक्ल चन्द्र बिम्ब दो शृङ्ग वाला दिखाई देता है। उन दोनों शृङ्गों से युक्त चन्द्र बिम्ब चन्द्रमास के $\frac{१}{४}$ भाग में अर्थात् शुक्ल पक्ष में ७$\frac{१}{२}$ तिथि तक दिन की समाप्ति पर तथा कृष्ण पक्ष के (चतुर्थ भाग में) अर्थात् कृष्ण पक्ष की ७$\frac{१}{२}$ तिथि बीतने के बाद अमावस्या तक रात्रि के अन्त में दिखाई देता है, अतः तभी शृङ्गोन्नति साधन करना उचित है। दोनों ही स्थितियों में सूर्य स्थित होने पर क्षितिज के लगभग होने पर वहाँ देखने वाले के सामने काँच के समान दिखाई देता है, अतः वैसा ही दिखाने के लिए चित्र में पट्टिकादि पर मध्य में सूर्य संज्ञक बिन्दु किया जाताहै। सूर्य से जिस दिशा में चाँद होता है उसी दिशा में भुज होता है, जिससे सूर्य से चन्द्रमा की दिशा ज्ञात करने के लिए उसी दिशा में भुज लगाया जाता है। चन्द्र से क्षितिज पर लम्ब करने से भुजाग्र से चन्द्रशङ्कु के रूप में पश्चिम की ओर कोटि ऊर्ध्वमुखी जैसी दिखाई देती है। दिये गये चित्र में —

'र' = सूर्यकेन्द्र, र मू = स्पष्टभुज, मू = भुजाग्र = कोटिमूल, चं मू = चन्द्रशङ्कु = कोटि है। $\sqrt{\text{भुज}^२ + \text{कोटि}^२}$ = कर्ण = रं च है। :र' कर्ण के मध्य बिन्दु से 'चं' = कोटि के अग्र भाग पर गया हुआ = र चं = कर्ण=सूर्यचन्द्र का केन्द्रान्तर है।

यहाँ चित्र में 'र' बिन्दु कर्ण के मूल में कल्पित सूर्य है। कर्णाग्र में चं = कल्पित चन्द्र बिम्ब है। कर्ण एवं कोटि के योग होने के स्थान पर 'चं' केन्द्र

Scanned with CamScanner

में तात्कालिक चन्द्र बिम्ब लिखा जाता है। उस पर कर्ण सूत्र मार्ग से कर्णमूल बिन्दुगत सूर्य चन्द्र बिम्ब को शुक्लता देता है। शुक्लवृत्त का केन्द्र भी कर्णरेखा में होता है, इसी कारण से शुक्लवृत्त में कर्ण रेखा से ही दिशा ज्ञान भी करने के लिए कर्णरेखा में शुक्लाङ्गुल दानकरना सही है। कर्णरेखा पर चन्द्र केन्द्र में जो लम्ब के रूप में याम्योत्तरा रेखा होती है, उससे कटा हुआ चन्द्र बिम्ब ही अपने दृश्य भाग में सूर्य द्वारा प्रकाशित होता है। इसीलिए अपने दृश्यवृत्त में याम्योत्तर बिन्दु तक शुक्ल होता है। उससे शुक्लाग्र याम्योत्तर तीनों बिन्दुओं पर गये हुए वृत्त से खण्डित चन्द्र बिम्ब जैसा होता है, वैसी ही चित्र में चन्द्र बिम्ब की आकृति उस दिन आकाश में दिखाई देती है। इसीलिए यहाँ शुक्लाग्र, दक्षिणी एवं उत्तरी तीनों बिन्दुओं पर जाने वाले वृत्त को बनाने के लिए दोनों मत्स्यों के मध्य सूत्र के योग से वृत्त की रचना करते हैं। यहाँ चित्र में — 'पू' पूर्वी बिन्दु से ''पू शु'' तुल्य शुक्लाङ्गुल दी गई है। शु बिन्दु = शुक्लाग्र चिह्न है। द उ = कर्ण रेखा पर याम्योत्तर रेखा है। शु द, शु उ दोनों बिन्दुओं से एक–एक मत्स्य वृत्त का निर्माण कर उन दोनों मत्स्यों का मध्य रेखा पर जहाँ योग होता है वह 'यो' बिन्दु है। यो बिन्दु से तीनों बिन्दुओं पर गये हुए ''द शु उ'' वृत्त खण्ड से खण्डित दृश्यवृत्त ''द पू उ शु'' आकार का आकाश में दिखाई देता है। यह क्षेत्र में स्पष्ट ही है।

कोटिरेखांग्र पर जो याम्योत्तर रूप में लम्ब रेखा है वह क्षितिज धरातल के समानान्तर है। अतः उस रेखा से जिस दिशा में शृङ्ग उन्नत हो उसी दिशा में धरती पर रहने वाले लोग शृङ्गोन्नति देखते हैं। भुज रेखा पर कोटिरेखा के लम्ब रूप में होने के कारण चन्द्रमा से जिस दिशा में सूर्य होता है उसी दिशा में भुज होने से शृङ्ग उन्नत होता है। जैसे कि चित्र में – कोटि के अग्र भाग में लम्ब के रूप में ''द उ'' याम्योत्तर रेखा 'र मू' के समानान्तर हैं। वहाँ 'द' शृङ्ग उन्नत है। वह शृङ्ग 'मू' बिन्दु से अर्थात् कोटि के मूल से ''र'' अर्थात् सूर्य की दिशा में होता है जो स्पष्ट ही है।

Scanned with CamScanner

कृष्णपक्ष में असित भाग (कृष्ण भाग) साधन

कृष्णपक्षे षड्भयुतं सूर्यं विशोध्येन्दोस्तथाऽसितम्।
दद्यात् वामं भुजं तत्र पश्चिमे मण्डलं विधोः।।

कृष्ण पक्ष में चन्द्र बिम्ब का कितना भाग काले रंग का होगा यह साधन करने के लिए स्पष्ट सूर्य + ६ राशि = योग जो आवे उसे स्पष्ट चन्द्र में से घटावें जो बचे उसकी इसी अधिकार के ६वें पद्य में बताये तरीके से (शेष की कला ÷ ९०० = अङ्गुलादि) शुक्लाङ्गुल साधन करने के समान ही कृष्णाङ्गुल साधन करें। चित्र में भुज को विपरीत अर्थात् सूर्य से चन्द्र दक्षिण में हो तो उत्तर की ओरतथा उत्तर में हो तो दक्षिण की ओर लगावें। तथा चन्द्र बिम्ब को कागज पर या पट्टि आदि पर पश्चिमी भाग में लगावें। इसका आशय है कि कर्ण एवं कोटि की युति पर शुक्ल हो तो अन्य कपाल में चन्द्र बिम्ब को लिखें।

पूर्णिमा की समाप्ति काल में सूर्य एवं चन्द्र का अन्तर ६ राशि होता है। उस समय से ही कृष्ण पक्ष का आरम्भ हो जाताहै। क्योंकि पूर्णिमान्त में चन्द्र बिम्ब पूरा ही शुक्ल होता है जिससे उसमें कृष्णाङ्गुल (कालिमा) का अभाव होता है। पूर्णिमा को सूर्य एवं चन्द्र का अन्तर जो ६ राशि अर्थात् १८०° होता है वह प्रतिदिन कृष्ण पक्ष में घटता हुआ अमान्तकाल में पूर्णतया समाप्त हो जाता है अर्थात् सूर्य चन्द्र बराबर हो जाते हैं क्योंकि ''दर्शः सूर्येन्द्र संगमः'' इस परिभाषा के अनुसार अमावस्यान्त सूर्य एवं चन्द्र रा./अ/क./वि. में पूर्णतया समान हो जाते हैं, जिस कारण से उनमें पूर्ण रूप से अन्तर का अभाव होता है। अमान्तकाल में पूरा चन्द्र बिम्ब ही कृष्ण होता है। पूर्ण चन्द्र बिम्ब का मान मध्यम मान से १२ अङ्गुल होता है। अतः बीच में अनुपात से कृष्णाङ्गुल साधन अनुपात से होगा ही। पूर्ण चन्द्र बिम्ब के मान में से कृष्णाङ्गुल मान घटाने पर कृष्ण पक्ष में शुक्लाङ्गुल मान जान सकते हैं। कृष्णाङ्गुल मान शुक्लाङ्गुल मान से विपरीत दिशा में दिखाई देने के कारण भुज को विपरीत दिशा में लगाना भी सही ही है। इसी तरह से कृष्ण पक्ष में पूर्वीक्षितिज पर चन्द्रोदय दिखाई देने के कारण परिलेख में विपरीत दिशा में प्रतीति के कारण पश्चिम में चन्द्र बिम्ब लिखा जाता है।

Scanned with CamScanner

1.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि चन्द्रश्रृंगोन्नति का सम्बन्ध आकाशस्थ चन्द्रमा की स्थिति से है। श्रृंग का अर्थ यहाँ सींघ के समान से लिया गया है। आकाश में

शुक्ल पक्ष के अन्तर्गत चन्द्रमा का बिम्ब बढ़ते हुए दिखलाई पड़ता है तथा अन्तिम तिथि पूर्णिमा को पूर्णबिम्ब दिखाई देता है। वहीं कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा की कला घटते हुए दिखलाई पड़ता है और अन्तिम तिथि अमावस्या को चन्द्रमा कलाहीन होकर अदृश्य हो जाता है अर्थात् हमें भूसापेक्ष उसके दर्शन नहीं हो पाते। शुक्ल पक्ष में प्रतिपदा से सार्द्धसप्तमी तिथि तक चन्द्रमा हमें श्रृंगवत् दिखलाई पड़ता है। फिर उसका आकार अर्धगोलमेव हो जाता है। इसी तरह पूर्णिमा तिथि को वह हमें बिल्कुल गोल दिखलाई पड़ता है।

शुक्ल पक्ष के आरम्भ में अथवा कृष्ण पक्ष के अन्त में चन्द्रमा के प्रकाशित या शुक्ल भाग का आकार श्रृंग की तरह होता है और उत्तर या दक्षिण की तरफ उठा रहता है। चन्द्रमा के आधे से अल्प शुक्ल (श्वेत) भाग की कोटी (उपरी भाग) श्रृंगाकार होता है, तब वहाँ इष्टकाल पर कितनी श्रृंगोन्नति होगी? यह ज्ञान का विषय है। चन्द्रमा का श्रृंगाकार भाग शुक्ल भाग के आधे से अल्प भाग में होता है। यह मासान्तपाद व प्रथम पाद में चन्द्र के आधे से अल्प शुक्ल भाग में संभव होता है। द्वितीय तथा तृतीय (चरण) पाद में ब्रह्मगुप्तादि ने कृष्ण श्रृंगोन्नति साधित की है, उससे आचार्य भास्कराचार्य सहमत नहीं है। वे कहते हैं कि कृष्ण श्रृंगोन्नति मनुष्यों के नेत्रों से दृश्य नहीं होती अत: शुक्ल श्रृंगोन्नति ही प्रसिद्ध है। अत: आचार्य ने मासान्त पाद व प्रथम पाद के लिए कहा है। द्वितीय तृतीय पाद में चन्द्र बिम्बार्ध कृष्ण होने से वहाँ कृष्ण श्रृंगोन्नति होती है। सूर्यास्त के पश्चात् जितनी घटी में चन्द्र अस्त होता है वह गत घटी है तथा सूर्यास्त से जितनी घटी पहले चन्द्रास्त होता है वह ऐष्य घटी है। इसी प्रकार पूर्व क्षितिज में सूर्योदय से गत एवं ऐष्य घटी होती है।

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

श्रृंगोन्नति – आकाशस्थ चन्द्रमा की सींघ सादृश्य स्थिति श्रृंगोन्नति कहलाती है।

शुक्ल पक्ष – जिस पक्ष में चन्द्रमा की कला दृष्ट हो उसे शुक्ल पक्ष कहते हैं।

कृष्णपक्ष – जिस पक्ष में चन्द्रमा की कला दृष्ट न हो उसे कृष्ण पक्ष कहते हैं।

दर्शान्तकाल – अमावस्यान्त काल।

सूर्यास्त – सूर्य का अदर्शन होना सूर्यास्त कहलाता है।

चन्द्रास्त – चन्द्र का अदर्शन।

सूर्योदय - क्षितिजानुरोधेन सूर्य का दर्शन होना सूर्योदय कहलाता है।

मासान्त – मास का अन्त मासान्त कहलाता है।

तरणि – सूर्य।

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – की उत्तरमाला

1. ख 2. ख 3. क 4. ख 5. क 6. क 7. क 8. क

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) सिद्धान्तशिरोमणि – मूल लेखक – भास्कराचार्य, टीका – कृष्णचन्द्रद्विवेदी।

(ख) सूर्यसिद्धान्त – टिककार – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय।

(ग) सूर्यसिद्धान्त – टिकाकार – गणपति लाल शर्मा

(घ) ग्रहलाघवम् – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

(ड.) ग्रहलाघवम् - केदारदत्त जोशी

1.9 सहायक पाठ्यसामग्री

सूर्यसिद्धान्त – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

सिद्धान्तशिरोमणि – डॉ0 सत्यदेव शर्मा

ग्रहलाघवम् – टिकाकार- प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

सूर्यसिद्धान्त – गणपति लाल शर्मा

सिद्धान्ततत्वविवेक – मूल लेखक – कमलाकर भट्ट, टिका – कृष्णचन्द्रद्विवेदी।

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. श्रृंगोन्नति से आप क्या समझते है।
2. कृष्णपक्ष में सूर्यास्त के पश्चात् चन्द्रोदय काल का ज्ञान कैसे करते है?
3. चन्द्रश्रृंगोन्नति ज्ञान के लिए भुजकोटिकर्ण का साधन कीजिये।
4. शुक्लांगुल का साधन कीजिये।
5. श्रृंगोन्नति प्रदर्शनार्थ परिलेख साधन कीजिये।

इकाई - 2 ग्रहोदयास्त विमर्श

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 ग्रहोदयास्त परिचय

2.4 ग्रहों का उदय और अस्त का गणितीय पक्ष

2.5 पारिभाषिक शब्दावली

2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.8 सहायक पाठ्यसामग्री

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -504 के द्वितीय खण्ड की दूसरी इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – ग्रहोदयास्त विमर्श। इससे पूर्व आपने चन्द्रश्रृंगोन्नति से जुड़े विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप ग्रहों के उदय-अस्त के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

'ग्रहोदयास्त' का सम्बन्ध ग्रहों के उदय एवं अस्त की स्थिति से है। इसके ज्ञान से ज्योतिष शास्त्रानुरागियों को ग्रहों की स्थितियों का सम्यक् ज्ञान हो सकेगा।

आइए इस इकाई में हम लोग 'ग्रहोदयास्त' के बारे में उसकी गणितीय पक्ष एवं सिद्धान्तों को जानने का प्रयास करते है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- ग्रहोदयास्त को परिभाषित कर सकेंगे।
- ग्रहोदयास्त को समझा सकेंगे।
- ग्रहों की विभिन्न स्थितियों को जान लेंगे।
- कौन सा ग्रह कब उदय होगा अथवा अस्त होगा इसे समझ लेंगे।

2.3 ग्रहोदयास्त परिचय

ग्रहोदयास्त से तात्पर्य ग्रहों के उदय एवं अस्त से है तथा गणित ज्योतिष का यह मुख्य विषय माना जाता है। वस्तुत: सभी ग्रह अपने-अपने कालांश तुल्य उदित और अस्त हो जाते हैं। मध्यमाधिकार में हम मध्यम ग्रह का साधन करते हैं, स्पष्टाधिकार में ग्रह स्पष्ट का साधन करते हैं। वहीं स्पष्ट ग्रह कब उदित और अस्त होगा? अर्थात् क्षितिजानुरोधेन वह कब उदित और अस्त होगा? इसका ज्ञान हमें उदयास्ताधिकार में प्राप्त होता है। अत: प्रस्तुत इकाई में आइए हम ग्रहों के उदयास्त का अध्ययन करते हैं। सर्वप्रथम आचार्य भास्कराचार्य जी द्वारा विचरचित सिद्धान्तशिरोमणि में कथित ग्रहोदयास्त – नित्योदयास्तयोर्गतगम्यलक्षण की बात करते हैं। वह ग्रहों के नित्य उदयास्त लक्षण की बात करते हुए कहते हैं कि -

प्राग्दृग्ग्रहः स्यादुदयाख्यलग्नमस्ताख्यकं पश्चिमदृग्ग्रहः सः।
प्राग्दृग्ग्रहोऽल्पोऽत्र यदीष्टलग्नाद्गतो गमिष्यत्युदयं बहुश्चेत्।।
ऊनोऽधिकः पश्चिमदृग्ग्रहश्चेदस्तं गतो यास्यति चेति वेद्यम्।

ग्रह के उदयलग्न को प्राग्दृग्ग्रह तथा अस्त लग्न को पश्चिम दृग्ग्रह कहते हैं। यदि प्राग्दृग्ग्रह इष्ट लग्न से अल्प हो तो ग्रह उदित हो चुका होता है। यदि अधिक हो तो ग्रह उदित होने वाला होता है। इसी प्रकार यदि पश्चिम दृग्ग्रह इष्ट लग्न से अल्प हो तो ग्रह अस्त चुका होता है और अधिक हो तो अस्त होने वाला होता है।

प्राग्दृग्ग्रह तथा पश्चिम दृग्ग्रह को परिभाषित करके आचार्य ने इनके द्वारा क्रान्तिवृत्त तथा पूर्वी एवं पश्चिमी क्षितिज के मिलान बिन्दुओं को परिभाषित कर दिया है, जब ग्रह उदित अथवा अस्त होता है तथा ग्रह का शर होता है। जब ग्रह का शराभाव होता है तब प्राग्दृग्ग्रह उदित होते हुए ग्रह पर तथा पश्चिम दृग्ग्रह अस्त होते हुए ग्रह पर ही होता है अर्थात् दोनों एक ही बिन्दु पर होते हैं।

ग्रह का शर होने पर इष्ट लग्न से दृग्ग्रह अल्प हो तो ग्रह क्षितिज के उपर रहने से उदित रहता है तथा अधिक होने पर क्षितिज से नीचे रहने के कारण उदित होने वाला होता है। अतः आचार्य ने यह युक्तियुक्त कहा है। इसी तरह इष्टलग्न से ग्रह का अस्तलग्न अल्प होने पर ग्रह पश्चिम क्षितिज के नीचे रहना है अतः अस्त हो चुका होता है तथा अधिक होने पर क्षितिज के उपर रहने से अस्त होने वाला होता है।

सूर्यासन्न अभाव के कारण उदयास्त -

निरूक्तौ ग्रहस्येति नित्योदयास्ताविनासन्नभावेन यौ तौ च वक्ष्ये।
रवेरूनभुक्तिर्ग्रहः प्रागुदेति प्रतीच्यामसावस्तमेत्यन्यथान्यः।।

नित्योदय के अतिरिक्त निरूक्त (ग्रह) के उदयास्त को आचार्य कहते हैं। यदि किसी ग्रह की गति रवि से अल्प हो तो पूर्व दिशा में उदित तथा पश्चिम में अस्त होता है। जैसे मंगल, गुरू, शनि अन्यथा होने पर विपरीत होता है अर्थात् सूर्य से अधिक गति ग्रह पश्चिम में उदित या पूर्व में अस्त होता है। जैसे चन्द्रमा।

मन्द गतिक् ग्रह के निकट जब सूर्य रहता है तो वह ग्रह अदृश्य होता है। वहॉ से सूर्य शीघ्र गति से उससे आगे हटता जाता है तथा मंदगतिक ग्रह पीछे हटता जाता है। अतः इस प्रकार पीछे रहा मन्दगति ग्रह पूर्व दिशा में सूर्योदय से पूर्व दृश्य होता है। यदि मन्दगति ग्रह सूर्य से अधिक आगे स्थित हो तो शीघ्रता से रवि उसके आसन्न जाता है तब सूर्य किरणों से आच्छादित ग्रह पश्चिम में अस्त होता है। इसी प्रकार युक्ति से अधिक भुक्ति वाला ग्रह पश्चिम में उदित तथा पूर्व में अस्त होता है।

बुध शुक्र में विशेष -

ज्ञशुक्रावृजू प्रत्यगुद्गम्य वक्रां गतिं प्राप्य तत्रैव यातः प्रतिष्ठाम्।

ततः प्राक् समुद्गम्य वक्रावृजुत्वं समासाद्य तत्रैव चास्तं व्रजेताम्।।

अर्थात् बुध शुक्र मार्गी होने पर तथा उनकी भुक्ति अधिक होने से पश्चिम में उदित होत हैं तथा वहॉं वक्री होकर वहीं पर अस्त हो जाते है तथा वक्री रहते हुए पूर्व में उदित होते हैं और वहॉं अवक्री होकर अधिक गति होने के कारण पूर्व में ही अस्त हो जाते है।

कालांश ज्ञान -

दस्रेन्दवः शैलभुवश्च शक्रा रूद्राः।
खचन्द्राः तिथयः क्रमेण।।
चन्द्रादितः काललवा निरूक्ता।
ज्ञशुक्रयोर्वक्रगयोर्द्विहीनाः।।

अर्थात् चन्द्र, मंगल, बुध, गुरू, शुक्र तथा शनि के निरूक्त कालांश क्रमाश: 12°, 17°, 14°, 11°, 10°, 15° होते हैं। वक्री बुध, षुक्र के कालांष इनसे दो कम अर्थात् क्रमश: 12 तथा 8 होते हैं।

कालांश का अर्थ कालात्मक अंश है। छः अंश की एक घटी होती है। एक अंश का दस पानीय पल होता है। सूर्य से अस्त होकर उदय होने में चन्द्रमा को दो घटी लगता है। इससे कम समय में सूर्य की प्रभा से आच्छादित होने से अदृश्य होता है। दो घटी बारह अंश के तुल्य होती है अतः चन्द्रमा के कालांश 12 होते हैं। इतने अंश से अधिक अन्तर पर चन्द्रमा दृष्टयोग्य होता है। मंगल के 17 अंश 2/50 घटियों के तुल्य होते हैं। इसी प्रकार अन्य ग्रहों के लिए कहे गये कालांश न्यूनाधिक उल्के बिंबों की स्थूल-सूक्ष्मता वश है और बुध-शुक्र के बिम्ब वक्र गति होने पर पृथ्वी से निकटतम होने के कारण अधिक चमकदार तथा बडे होने से उनके कालांश 2 अंश न्यून कहे हैं। क्योंकि तब वे सूर्य से अधिक सान्निध्य में होने पर अस्त होते हैं।

ग्रहोदयास्त समय ज्ञात करना -

यत्रोदयो वास्तमयोऽवगम्यस्तदिग्भवो दृक्खचरो रविश्च।
अस्तोदयासन्नदिने कदाचित् साध्यस्तु पश्चात् तरणिः सषड्भः।।

ग्रह के उदय व अस्त को जब जानना हो तो ग्रह के पूर्व अथवा पश्चिम उदयास्त के अनुसार पूर्व अथवा पश्चिम दृग्ग्रह की तथा सूर्य की स्थिति उस दिन उदयास्त से कुछ पूर्व ज्ञात करना चाहिये। यदि ग्रह पूर्व में उदित हो तो ग्रह साधन करके उदय लग्न साधन करें। यदि पश्चिम में ग्रह उदयास्त हो तो ग्रह का साधन करके सूर्य में छः राशि जोड़ कर लग्न साधन करे।

उक्तेभ्य उनाभ्यधिका यदीष्टा: खेटोदयो गम्यगतस्तदा स्यात् ।
अतोऽन्यथा वास्तमयोऽवगम्यः प्रोक्तेष्ट कालांशवियोगलिप्ताः।।

खाभ्राष्टभूघ्ना द्युचरोदयाप्ताः खेटार्कभुक्त्यन्तरभाजिताश्च।
वक्रे तु भुक्त्यैक्यहता अवाप्तास्तदन्तराले दिवसा गतैष्या:।
तात्कालिकाभ्यां रविदृग्ग्रहाभ्यां मुहुः कृतास्ते स्फुटतां प्रयान्ति।।

यहाँ इस श्लोक में ग्रह के उदित होने अथवा उदित हो चुकने का ज्ञान बतलाया गया है। आचार्य का कथन है कि प्राप्त इष्ट कालांश यदि पठित कालांश से अल्प हो तो ग्रह को उदय होना शेष होता है। यदि अधिक हो तो उदय हो चुका होता है। अस्त के समय इससे विपरीत होता है अर्थात् यदि इष्ट कालांश पठित कालांश से अल्प हो तो ग्रह अस्त हो चुका तथा अधिक हो तो अस्त कब होगा। पठित कालांश तथा इष्ट कालांश के अन्तर को १८०० से गुणा करके दृग्ग्रह की आक्रांत राशि के स्वदेशीय उदय असुओं से विभक्त करके प्राप्त कला फल को, ग्रह वक्री हो तो ग्रह तथा सूर्य की गति के अन्तर से पुन: विभक्त करने से तथा मार्गी होने पर दोनों के गति योग से विभक्त करने से प्राप्तफल क्रमश: ग्रह उदित होने के पश्चात् की दिन संख्या तथा उदित होने में शेष दिनों की संख्या होती है।

ग्रहनक्षत्रों के उदयास्त में वैशिष्ट्य –

प्रवह वायु द्वारा पूर्व की ओर गतिशील ग्रहों एवं नक्षत्रों के क्षितिज के सान्निध्य से जो उदयास्त होता है वह उनका प्रतिदिन अपने-अपने सावन दिनों में लेना प्रसिद्ध ही है। यहाँ न्यून किरण वाले ग्रह एवं नक्षत्रों के सूर्य की समीपता के कारण सूर्य की तेज किरणों के प्रभाव से उन ग्रह एवं नक्षत्रों का नहीं दिखाई देना ही उनका अस्त होना तथा सूर्य से जितने अन्तर पर जाने से उनका दिखाई देना ही उदय कहलाता है।

उदयास्त में दिशा ज्ञान -

सूर्यादभ्यधिका: पश्चादस्तं जीवाकुजार्कजा:।
ऊना: प्रागुदयं यान्ति ज्ञशुक्रौ वक्रिणौ तथा।।
ऊना विवस्वत: प्राच्यामस्तं चन्द्रज्ञ भार्गवा:।
व्रजन्त्यभ्यधिका: पश्चादुदयं शीघ्रयायिन:।।

अर्थात् वृहस्पति मंगल एवं शनि वक्री हों या मार्गी सूर्य से अधिक (आगे) होने पर पश्चिम में अस्त होते हैं। तथा सूर्य से पीछे कम होने पर पूर्व दिशा में उदित होते हैं। बुध एवं शुक्र दोनों यदि वक्री हों तो सूर्य से आगे गये होने पर पश्चिम दिशा में अस्त तथा सूर्य से कम होने पर पूर्व में उदित होते हैं। सूर्य की तुलना में अधिक गति होने वाले चन्द्र –बुध एवं शुक्र ग्रह सूर्य से कम होने पर पृष्ठगत होने से पूर्व दिशा में अस्त होते हैं तथा सूर्य से आगे गये होने पर पश्चिम दिशा में उदित होते हैं।

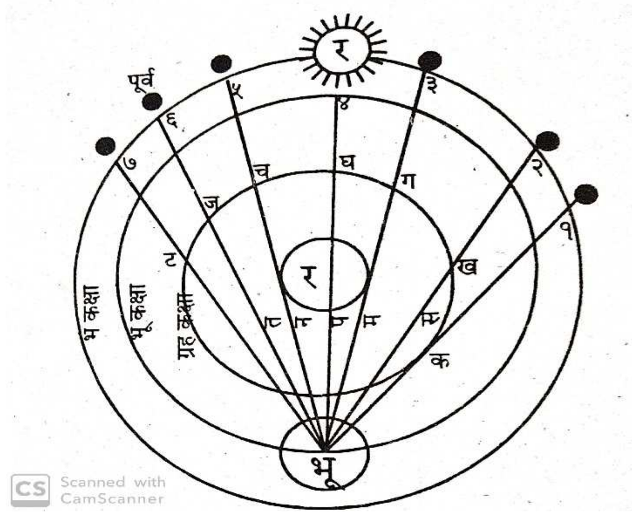

बृहस्पति–मंगल एवं शनि ग्रहों की गति सूर्य से कम होती है अतः वे मार्गी हों यावक्री जब सूर्य से आगे हों तो उनकी प्रत्येक दिन की गति कम होने से सूर्य के साथ उनका अन्तर कम होते जाने से दिन की समाप्ति पर स्वकालांश से कम अन्तर होने पर पश्चिम दिशा में अस्त होना कहा गया है। वे अस्तकाल के बाद से लेकर जब सूर्य से पृष्ठगत हों तब अधिक गति वाले सूर्य से उनका अन्तर बढते जाने के कारण से कालांशाओं से अधिक अन्तर होने पर रात्रि शेष में अर्थात् सूर्योदय से पहले ही पूर्व दिशा में उनके उदित होने की बात कहा जाना उचित ही है।

वक्र गति वाले बुध एवं शुक्र की सूर्य से अधिक गति होने से जब वे सूर्य से आगे गये हुए हों तो वक्र गति वाले होने से उनके सूर्य से प्रतिदिन के अन्तर के घटते जाने के कारण कालांश से कम अन्तर होने पर वे दोनों पश्चिम दिशा में अस्त होते हैं। सूर्य से पीछे उन वक्री ग्रहों के होने पर हर दिन पश्चिम दिशा में अस्त होते हैं। सूर्य से पीछे उन वक्री ग्रहों के होने पर हर दिन पश्चिम की ओर गति करते हुए (वक्र गति के कारण) उनका सूर्य से अन्तर बढते जाने के कारण कालांशाओं से अधिक अन्तर होने पर पूर्व में उदय होगा ही।

चन्द्र–बुध–शुक्र मार्गी होने पर सूर्य से इनकी गति अधिक होने से जब सूर्य से ये पीछे होते हैं तो उनकी अधिक गति होने के कारण से प्रतिदिन सूर्य के साथ उनका अन्तर कम होते जाने से पूर्व दिशा में उनका अस्त होना कहा गया है। अस्तकाल के बाद जब वे सूर्य से आगे गये हुए होते हैं तो कालांशाओं से अधिक अन्तर होने पर पश्चिम दिशा में उदय होते हैं।

सूर्य से अधिक या कम ६ राशि के अन्तर पर ही आगे या पीछे गये हुए समझने चाहिए।

Scanned with CamScanner

नवीनाचार्यों के मतानुसार ग्रह एवं पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करते हैं। यहाँ सरलता से जानने के लिए ग्रह भ्रमण मार्ग को वृत्ताकार मानकर उनके उदयास्त की स्थिति को दिखाया जा रहा है—

क्षेत्र परिचय— बनाये गये चित्र में अपनी कक्षा में 'क' बिन्दु पर गया हुआ ग्रह भू निवासियों द्वारा भगोल में १ बिन्दु पर दिखाई देता है। इसी तरह ख,ग,घ,च,ज,ट बिन्दुओं पर अपनी कक्षा में घूमता हुआ ग्रह भूनिवासियों द्वारा आकाश कक्षा में २,३,४,५,६,७ बिन्दुओं पर मार्गीगति जैसा दिखाई देता है। लेकिन जब ग्रह अपनी कक्षा में 'ट' बिन्दु से आगे होने पर त,न,प,म,सं,क बिन्दुओं पर होता है तो भ कक्षा में ७ बिन्दु से लौटकर ६,५,४,३,२,१ बिन्दुओं पर चलता हुआ वक्रगति जैसा दिखाई देता है। इसका विस्तार से विचार ग्रहों की ८ प्रकार की गति विचार प्रकरण में स्पष्टाधिकार में किया जा चुका है। इस क्षेत्र में यहाँ प्रदर्शित विषय का ही वर्णन किया जा रहाहै। भूपृष्ठ से सूर्यकेन्द्रगत सूत्र भ कक्षा में जहाँ लगता है वहाँ ''र'' सूर्यबिम्ब स्थिर भूवासियों द्वारा देखा जाता है। स्वकक्षा में स्थित 'क' बिन्दु गत ग्रह भकक्षा में १ बिन्दु पर दिखाई देता है। वहाँ ग्रह का सूर्य के साथ अन्तर अधिक होने से ग्रह बिम्ब बडा दिखाई देता है। उस स्थान से आगे मार्गीगति से चलते हुए ग्रह के सूर्य के साथ ज्यों–ज्यों अन्तर कम होता जाता है वैसे–वैसे ग्रह क्षीण लगता है। इसी तरह सूर्य से कालांश तुल्य अन्तर होने पर '३' बिन्दु पर वर्तमान ग्रह सूर्य की तेज किरणों के प्रभाव से भू निवासियों को नहीं दिखाई देता। वहाँ ४ बिन्दु की तुलना में ३ बिन्दु पर गया हुआ ग्रह सूर्य से कम होने से पूर्वक्षितिज के लगभग सूर्य होने पर पूर्व दिशा में अस्त होता है। 'र' बिन्दु पर ग्रह के परम अस्त होने के कारण से। वहाँ से मार्गी गति से चलता हुआ ग्रह जब सूर्य से आगे कालांशाओं से अधिक अन्तर पर '५' बिन्दु पर जाता है तो सूर्यास्त होने पर पश्चिम दिशा में क्षितिज से ऊपर ग्रह दिखाई देता है। इसी तरह प्रतिदिन मार्गीगति से चलते हुए ग्रह के अन्तर कीवृद्धि के कारण से ६,७ दोनों बिन्दुओं से उत्तरोत्तर ग्रह बिम्ब बड़ा होता जाता है। तथा अपनी कक्षा में मार्गीगति ही ''ट'' बिन्दु से आगे त, न इत्यादि क्रम से चलता हुआ ग्रह भकक्षा में वक्रगति के समान पश्चिम की ओर जाता हुआ सूर्य के लगभग '५' बिन्दु पर पश्चिम दिशा में अस्त होता है। पुनः 'र' बिन्दु पर उसका परम अस्त है ।वक्री ग्रह ही जब ३ बिन्दु पर गया हो तो रात्रि शेष में पूर्व दिशा में उसका उदय होता है यह क्षेत्र देखने से स्पष्ट है।

यह स्थिति पृथ्वी एवं सूर्य के बीच में गये हुए ग्रह कक्षा में दिखाई देती है, इस तरह बुध एवं शुक्र दोनों के उदयास्त की उत्पत्ति नवीनाचार्यों के मतानुसार

Scanned with CamScanner

भी सूर्य सिद्धान्त के समान ही है। इससे बुध एवं शुक्र मार्गी होकर पश्चिम में उदित होकर,वक्री एवं मार्गी होते हुए पश्चिम में ही अस्त होते हैं। यह सिद्धान्त शिरोमणि में कहा गया भास्कराचार्य का कथन भी सिद्ध होता है।

लेकिन भू के ऊपर की कक्षा में मंगल–गुरु–शनि का सूर्य की स्थिरता के कारण से सूर्य सिद्धान्त में कहे गये उदयास्त नहीं होते, किन्तु जब वे सूर्य से कम अर्थात् पृष्ठगत हों, कालांशाओं के भीतर ही हों तो दिन समाप्त होने पर पश्चिम में उदित दिखाई देते हैं। इसका कारण उदयास्त की दिशा विपरीत होना है, जो नवीनाचार्यों ने भू भ्रमण (सूर्य की परिक्रमा को) स्वीकार कर तथा स्वाङ्ग भ्रमण (स्वाक्षे भूमेः भ्रमणात्) अर्थात् अपनी धुरी पर घूमने के कारण ये उदयास्त प्राप्त होते हैं। अतः अनुमान करते हैं कि प्राचीनाचार्यों ने सूर्य को केन्द्रीभूत ग्रह कक्षा मानी हैं तथा उनका मार्गी एवं वक्री भेद पूर्व में स्पष्टाधिकार में ग्रहों के आठ प्रकार की गति विचार में बता दिया गया है, उसमें देख लें।

Scanned with CamScanner

कालांश ज्ञान की आवश्यकता –

एभ्योऽधिके: कालभागैर्दृश्या न्यूनैरदर्शना।
भवन्तिलोके खचरा भानुभाग्रस्त मूर्तय:।।

अर्थात् सूर्य से जितने अन्तर के अंशों पर ग्रह रहने पर अदृश्य होता हो उतने ही अंश उस ग्रह की कालांश कहलाता है। इसलिए ग्रह की इष्ट कालांश यदि पठित कालांश से अधिक होते हैं तो सूर्य से ग्रह के अधिक अन्तर पर स्थित होने के कारण वह ग्रह दृश्य या उदित कहलाता है। तथा पठित कालांशों से इष्ट कालांश कम हो तो सूर्य के साथ ग्रह के अन्तर के न्यून होने के कारण उसका अदर्शन या अस्त होना जो कहा गया है यह सही है, यह उत्पन्न होता है।

नक्षत्रों के कालांश –

स्वात्यगस्त्य मृगव्याध चित्रा ज्येष्ठा: पुनर्वसु:।
अभिजित् ब्रह्हृदयं त्रयोदशभिरंशकै:।।
हस्तश्रवणफाल्गुन्य: श्रविष्ठा रोहिणी मघा।
चतुर्दशांशकैर्दृश्या विशाखाऽश्विनिदैवतम्।।
कृतिकामैत्रमूलानि सार्पं रौद्रर्क्षमेव च।
दृश्यन्ते पंचदशभिराषाढाद्वितयंतथा।।
भरणीतिष्य सौम्यानि सौक्ष्म्यात् त्रिसप्तकांशक:।
शेषाणि सप्तदशभिर्दृश्यादृश्यानि भानि तु।।

स्वाती, अगस्त्य, लुब्धक, चित्रा, ज्येष्ठा, पुनर्वसु, अभिजित्, ब्रह्महृदय ये आठ नक्षत्र सूर्य से १३ अंश पीछे उदित तथा आगे हाने पर अस्त होते हैं। इसलिए इनकी उदयास्त कालांशा १३ अंश है। हस्त, श्रवण, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, धनिष्ठा, रोहिणी, मघा, विशाखा, अश्विनी इन नक्षत्रों की उदयास्त कालांशा १४ अंश होते हैं। कृत्तिका, अनुराधा, मूल, आश्लेषा, आर्द्रा, पूर्वाषाढ, उत्तराषाढ ये ७ नक्षत्र १५ कालांशाओं से उदयास्त होते हैं। भरणी, पुष्य, मृगशिरा ये ३ नक्षत्र इनके अतिलघु बिम्ब होने से २१ कालांशाओं से दिखाई देते हैं। शेष नक्षत्र शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, ब्रह्मा, अग्नि, अपांवत्स १७ कालांशों से उदयास्त होते हैं। नक्षत्रों में भी जिनके बिम्ब स्थूल होते हैं उनकी कालांशा कम एवं लघु होते हैं उनकी कालांशा अधिक होती है। जिस तरह ग्रह के उदयास्त के गत एवं गम्य दिनों का साधन किया जाता है उसी तरह नक्षत्रों के भी उनकी उपर्युक्त कालांशाओं के अनुसार उदयास्त के गतैष्य दिन केवल सूर्य की गति से ही साधित कर सकते हैं क्योंकि नक्षत्रों की गति नहीं होने से केवल सूर्य की गति का ही ग्रहण किया गया है।

''नक्षत्रों के उदयास्त कालांश बोधक सारिणी''

क्र.सं.	नक्षत्रों के नाम	उदयास्त कालांश
१.	स्वाती, अगस्त्य, लुब्धक, चित्रा, ज्येष्ठा, पुनर्वसु, अभिजित्, ब्रह्महृदय	१३° अंश
२.	हस्त, श्रवण, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, धनिष्ठा, रोहिणी, मघा, विशाखा, अश्विनी	१४° अंश
३.	कृत्तिका, अनुराधा, मूल, अश्लेषा आर्द्रा, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा	१५° अंश
४.	भरणी, पुष्य, मृगशिरा	२१° अंश
५.	शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद ब्रह्मा, अग्नि, अपाँवत्स	१७°अंश

Scanned with CamScanner

सदोदित नक्षत्र –

अभिजिद् ब्रह्महृदयं स्वातिवैष्णव वासरा:।

अहिर्बुध्न्यमुदक्स्थत्वान्नलुप्यन्तेऽर्क रश्मिभि:॥

अर्थात् अभिजित्, ब्रह्हृदय, स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा तथा उत्तरभाद्रपद ये ६ नक्षत्र क्रान्तिवृत्त से उत्तर

में शराग्र से अधिक भाग पर स्थित होने के कारण सूर्य की किरणों के प्रभाव से अस्त नहीं होते हैं। पूर्व पद्य में अभिजित् ब्रह्महृदय को १३ अंशों के अन्तर पर होने से ही अभिजितादि की उदयास्त कालांश १३ बतायी गयी है एवं अब कह रहे हैं कि ये अभिजित् ब्रह्हृदय सदोदित नक्षत्र हैं ऐसा कथन क्यों है? यह बता रहे है कि अभिजितादी अपने-अपने तारा पुंजों में जो प्रधान योगतारा होती है वह क्रान्तिवृत्त से उत्तर में अधिक शर के अन्तर पर रहने के कारण उन नक्षत्रों की योगतारा सदोदित होती है।

अभ्यास प्रश्न –

1. चन्द्रमा का कालांश कितना होता है।

   क. १२ अंश ख.१४ अंश ग.१५ अंश घ.१६ अंश

2. वृहस्पति, मंगल एवं शनि वक्री या मार्गी होकर किस दिशा में अस्त होते है।

   क. पूर्व ख. पश्चिम ग. उत्तर घ. दक्षिण

3. सूर्यसिद्धान्त के अनुसार वृहस्पति के उदयास्त कालांश कितने है।

   क. ११ अंश ख.१२ अंश ग. १३ अंश ध. १४ अंश

4. सूर्य से जितने अन्तर के अंशों पर ग्रह रहने पर अदृश्य होता हो उतने ही अंश उस ग्रह की क्या कहलाता है।

   क. उदय ख. अस्त ग. कालांश घ. ग्रहयुति

5. निम्न में सदोदित नक्षत्र हैं।

   क. अभिजित् ख. ब्रह्महृदय ग. स्वाति घ. इनमें सभी

2.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि ग्रहोदयास्त से तात्पर्य ग्रहों के उदय एवं अस्त से है तथा गणित ज्योतिष का यह मुख्य विषय माना जाता है। वस्तुत: सभी ग्रह अपने-अपने कालांश तुल्य उदित और अस्त हो जाते हैं। मध्यमाधिकार में हम मध्यम ग्रह का साधन करते हैं, स्पष्टाधिकार में ग्रह स्पष्ट का साधन करते हैं। वहीं स्पष्ट ग्रह कब उदित और अस्त होगा? अर्थात् क्षितिजानुरोधेन वह कब उदित और अस्त होगा? इसका ज्ञान हमें उदयास्ताधिकार में प्राप्त होता है। अत: प्रस्तुत इकाई में आइए हम ग्रहों के उदयास्त का अध्ययन करते हैं। सर्वप्रथम आचार्य भास्कराचार्य जी द्वारा विचरचित सिद्धान्तशिरोमणि में कथित ग्रहोदयास्त – नित्योदयास्तयोर्गतगम्यलक्षण की बात करते हैं। वह ग्रहों के नित्य उदयास्त लक्षण की बात करते हुए कहते हैं कि -

प्राग्दृग्ग्रहः स्यादुदयाख्यलग्नमस्ताख्यकं पश्चिमदृग्ग्रहः सः।
प्राग्दृग्ग्रहोऽल्पोऽत्र यदीष्टलग्नाद्गतो गमिष्यत्युदयं बहुश्चेत्।।
ऊनोऽधिकः पश्चिममदृग्ग्रहश्चेदस्तं गतो यास्यति चेति वेद्यम्।

ग्रह के उदयलग्न को प्राग्दृग्ग्रह तथा अस्त लग्न को पश्चिम दृग्ग्रह कहते हैं। यदि प्राग्दृग्ग्रह इष्ट लग्न से अल्प हो तो ग्रह उदित हो चुका होता है। यदि अधिक हो तो ग्रह उदित होने वाला होता है। इसी प्रकार यदि पश्चिम दृग्ग्रह इष्ट लग्न से अल्प हो तो ग्रह अस्त चुका होता है और अधिक हो तो अस्त होने वाला होता है।

प्राग्दृग्ग्रह तथा पश्चिम दृग्ग्रह को परिभाषित करके आचार्य ने इनके द्वारा क्रान्तिवृत्त तथा पूर्वी एवं पश्चिमी क्षितिज के मिलान बिन्दुओं को परिभाषित कर दिया है, जब ग्रह उदित अथवा अस्त होता है तथा ग्रह का शर होता है। जब ग्रह का शराभाव होता है तब प्राग्दृग्ग्रह उदित होते हुए ग्रह पर तथा पश्चिम दृग्ग्रह अस्त होते हुए ग्रह पर ही होता है अर्थात् दोनों एक ही बिन्दु पर होते हैं।

ग्रह का शर होने पर इष्ट लग्न से दृग्ग्रह अल्प हो तो ग्रह क्षितिज के उपर रहने से उदित रहता है तथा अधिक होने पर क्षितिज से नीचे रहने के कारण उदित होने वाला होता है। अतः आचार्य ने यह युक्तियुक्त कहा है। इसी तरह इष्टलग्न से ग्रह का अस्तलग्न अल्प होने पर ग्रह पश्चिम क्षितिज के नीचे रहना है अतः अस्त हो चुका होता है तथा अधिक होने पर क्षितिज के उपर रहने से अस्त होने वाला होता है।

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

ग्रहोदयास्त – ग्रहों का उदय एवं अस्त को ग्रहोदयास्त कहते हैं।

कालांश – काल सम्बन्धित अंश कालांश कहलाता है। सभी ग्रह अपने-अपने कालांश तुल्य ही उदित एवं अस्त होते हैं।

उदय – ग्रह का दिखलाई पड़ना या दर्शन होना।

अस्त – ग्रह का क्षितिजानुरोधेन अदर्शन होना।

दृग्ग्रह – दिखलाई पड़ने वाला ग्रह।

शर – दूरी।

क्रान्तिवृत्त- कदम्ब से ९० अंश से निर्मित होने वाला वृत्त।

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – की उत्तरमाला

1. क 2. ख 3. क 4. ग 5. घ

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) सिद्धान्तशिरोमणि – मूल लेखक – भास्कराचार्य, टीका – कृष्णचन्द्रद्विवेदी।

(ख) सूर्यसिद्धान्त – टिककार – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय।

(ग) सूर्यसिद्धान्त – टिकाकार – गणपति लाल शर्मा

(घ) ग्रहलाघवम् – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

(ड.) ग्रहलाघवम् - केदारदत्त जोशी

2.9 सहायक पाठ्यसामग्री

सूर्यसिद्धान्त – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

सिद्धान्तशिरोमणि – डॉ0 सत्यदेव शर्मा

ग्रहलाघवम् – टिकाकार- प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

सूर्यसिद्धान्त – गणपति लाल शर्मा

सिद्धान्ततत्वविवेक – मूल लेखक – कमलाकर भट्ट, टिका – कृष्णचन्द्रद्विवेदी।

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. उदयास्त किसे कहते है। वर्णन कीजिये।
2. ग्रहों के कालांश का वर्णन कीजिये?
3. नक्षत्रों के कालांश का उल्लेख कीजिये।
4. उदयास्त को सक्षेत्र स्पष्ट कीजिये।
5. उदयास्त पर निबन्ध लिखिये।

इकाई - 3 ग्रहयुति एवं पातविचार

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 ग्रहयुति परिचय

3.4 पात विचार

3.5 पारिभाषिक शब्दावली

3.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.8 सहायक पाठ्यसामग्री

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई-504 के द्वितीय खण्ड की तीसरी इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – ग्रहयुति एवं पात विचार। इससे पूर्व आपने चन्द्रश्रृंगोन्नति, ग्रहोदयास्त से जुड़े विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप ग्रहयुति एवं पात के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

'ग्रहयुति एवं पात' का सम्बन्ध ग्रहण के अन्तर्गत चन्द्रमा की स्थिति से है। इसके ज्ञान से ज्योतिष शास्त्रानुरागियों को ग्रहण एवं चन्द्रश्रृंगोन्नति का सम्यक् ज्ञान हो सकेगा।

आइए इस इकाई में हम लोग 'ग्रहयुति एवं पात' के बारे में उसकी गणितीय पक्ष एवं सिद्धान्तों को जानने का प्रयास करते है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- ग्रहयुति को परिभाषित कर सकेंगे।
- पात को समझा सकेंगे।
- 'ग्रहयुति' की विभिन्न स्थितियों को जान लेंगे।
- ग्रहयुति एवं पात के गणितीय पक्ष को प्रतिपादित कर सकेंगे।

3.3 ग्रहयुति परिचय

जिन दो ग्रहों की युति के बारे में विचार करना हो उनमें से जिस ग्रह की गति अधिक हो, उस ग्रह के मन्दगति वाले ग्रह से आगे रहने पर उन दोनों मन्दगति एवं शीघ्रगति वाले ग्रहों की युति पहले ही हो जाती है। अन्यथा शीघ्रगति वाला ग्रह मन्दगति वाले ग्रह से कम हो तो (उन दोनों ग्रहों मन्द गति एवं शीघ्र गति वाले का) संयोग आगे होगा। ऐसा जानना चाहिये। लेकिन इस तरह से विचार तभी होता है जब दोनों ग्रह मार्गी हों। वक्र गति वाले ग्रहों में युति इससे विपरीत समझना चाहिये। अर्थात् वक्र गतिवाला शीघ्रगति ग्रह मन्दगति वाले ग्रह से कम हों तो उन दोनों ग्रहों की युति पूर्व में ही हो जाती है एवं शीघ्र गति वाला ग्रह मन्द गति वाले ग्रह से आगे हो तो उनकी युति आगे होगी।

जिन दो ग्रहों की युति का विचार करना हो उनमें से एक ग्रह मार्गी एवं दूसरा वक्री हो तो उसकी वक्रगति होने के कारण मार्गगति वाले ग्रह से अधिक होने पर उन दोनों ग्रहों की युति मार्गी एवं वक्री की पहले ही हो जाती है। वक्रगति वाला मन्द ग्रह शीघ्रगति वाले मार्गी ग्रह से आगे होने पर उन दोनों ग्रह की युति आगे होगी। ऐसा जानना चाहिये।

स्पष्ट ग्रह ही मनुष्यों द्वारा देखे जाने योग्य होने के कारण उनकी स्पष्ट गति ही ग्रहण करनी चाहिए। ग्रहों की भिन्न-भिन्न गति होने के कारण से जिन दो ग्रहों की युति का विचार करते हैं उनमें से कोई एक मन्द गति वाला तथा दूसरा शीघ्र गति वाला होगा ही। इसीलिए उन दोनों ग्रहों के मार्गी होने के कारण शीघ्र ग्रह यदि मन्द ग्रह से अधिक हो तो वह शीघ्रगति वाला ग्रह मन्दगति वाले ग्रह के साथ योग करके आगे गया हुआ होने से उनका योग गत हो चुका अर्थात् उनकी युति पहले ही हो गई, यह स्पष्ट हुआ।

यदि शीघ्र गति ग्रह मन्द गति ग्रह से कम हो तो मन्द गति ग्रह से पीछे होने के कारण शीघ्र गत ग्रह अधिक गति से चलता हुआ मन्दगति वाले ग्रह के साथ योग करेगा, इससे उनका योग आगे होगा यह स्पष्ट हुआ। यदि मन्दगति एवं शीघ्रगति वाले दोनों ग्रह ही वक्री हों तो वे दोनों ही वक्री गति होने से पश्चिम की ओर चलते हैं। तब शीघ्र ग्रह मन्दगति वाले ग्रह से कम होने पर शीघ्र गति वाला वक्री ग्रह तेज गति से चलता हुआ मन्दगति वाले वक्री ग्रह को पकड लेगा अर्थात् उसके समान हो जायेगा, अतः उन दोनों वक्री ग्रहों की युति आगे होगी। यह सिद्ध हुआ। यदि इन दोनों ग्रहों में एक ग्रह मार्गी एवं दूसरा ग्रह वक्री हो तो उन दोनों में वक्री ग्रह के मार्गी ग्रह से अधिक होने से पश्चिम की ओर चलता हुआ वक्री ग्रह, पूर्व की ओर चलते हुए मार्गी ग्रह से आने वाले समय में योग करेगा। इसलिए दोनों का योग भावी होगा यह सिद्ध हुआ।

यहॉ राशियों को पूर्वादि क्रम से स्थापित करने से ऐसा है। राश्यादि मान से ग्रह कम या अधिक होने की कल्पना किये जाने के कारण किसी समय मीन राशि में ग्रह होगा तो यह ग्रह मेष राशि में स्थित ग्रह की अपेक्षा अधिक माने जाने में आपत्ति होगी। इसलिए जो ग्रह अधिक पूर्व में होगा वह अधिक तथा पश्चिम में होने वाले ग्रह को न्यून माना जायेगा परन्तु यह 6 राशियों के अन्तर पर ही जानना चाहिए।

ग्रहयुति वचिार में गतैष्यदिनादि साधन -

ग्रहयोः युतौ तुल्यत्वसाधनार्थं गतैष्य दिनादि कथनम्।
ग्रहान्तरकलाः स्वभुक्तिलिप्तासमाहताः।।
भुक्त्यन्तरेण विभजेदनुलोम विलोमयोः।
द्वयोर्वक्रिण्यथैकस्मिन् भुक्तियोगेन भाजयेत्।।
लब्धं लिप्तादिकं शोध्यं गते देयं भविष्यति।
विपर्ययाद्वक्रगत्योरेकस्मिंस्तु धनव्ययौ।।
समलिप्तौ भवेतां तौ ग्रहौ भगण संस्थितौ।

विवरं तद्वदुद्धृत्य दिनादि फलमिष्यते।।

अर्थात् द्वयोः ग्रहयोरन्तराभावस्य नाम युतिः। अतः युति काले तौ ग्रहौ तयोरन्तराभावात् सर्वावयवेन तुल्यौ भवतः।

जिन दो ग्रहों की युति का विचार करना हो उनके अन्तर की कलाओं को अलग रखें। इन दो जगह रखी हुई अन्तरकलाओं को अपनी-अपनी कलादि गति से गुणा करें। इस आये हुए दोनों स्थानों के गुणनफल में दोनों ही मार्गी ग्रह या दोनों ही वक्री ग्रहों की गतियों के कलात्मक अन्तरमान का भाग दें। यदि दोनों ग्रहों में से कोई एक ग्रह ही वक्री हो तो उन ग्रहों की अन्तरकलाओं को अपनी-अपनी गति से गुणा करें एवं उस गुणनफल में दोनों ग्रहों की गति कलाओं के योग का भाग दें। जो भी भाग देने पर भागफल आयेगा वह कलादि होगा। इस भागफल को यदि ग्रहों की युति पहले हो गयी हों तो उन-उन ग्रहों में से घटा दें एवं युति आगे होने वाली हों तो उन-उन ग्रहों में जोड़ दें। इस प्रकार दोनों ही ग्रहों की मार्गी होने पर करें। यदि दोनों वक्रगति के हों तो योग के गति होने पर उन-उन दोनों ग्रहों में जोड़ने से तथा यदि योग आगे होने वाला हो तो उन दोनों ग्रहों में से उस भागफल को घटावें। यदि दोनों ग्रहों में से कोई एक वक्री हो तो उस भागफल को उनका योग गत होन पर उन ग्रहों में जोड़ दें तथा योग आगे होने पर उन ग्रहों में से भागफल घटा दें अर्थात् वक्री ग्रह में उस फल को योग आगे होने वाला हो तो वक्री ग्रह में उस भागफल को घटावें तथा मार्गी ग्रह में उस भागफल को जोड़ें। इस तरह करने पर राश्यादि विभाग में गये हुए वे दोनों ग्रह जोड़ने से सब प्रकार से समान हो जावेंगें। उन दोनों ग्रहों का अन्तर पूर्व में बताये गये अनुसार दोनों की मार्गी या दोनों की वक्री गति होने पर दोनों की गत्यन्तर कलाओं को मार्गीग्रह होने पर दोनों के अन्तर से एवं वक्री में गतियों का योग जो हो उससे भाग देकर जो फल प्राप्त हो वह गत योग होने पर गत दिन तथा आगामी योग होने पर एष्य दिन कहलाते हैं। उतने दिन पूर्व योग हो गया या इतने दिन बात योग होगा यह कहना चाहिए।

दो ग्रहों के अन्तर का अभाव युति होता है। अतः युति के समय दोनों ग्रहों का अन्तराभाव होने से वे दोनों सभी तरह से समान होते है। इच्छित दिन की युति से पहले या बाद में उन दोनों ग्रहों में अन्तर होता है। अतः दोनों ग्रह अलग-अलग कितने संस्कार करने से समान होंगे, यह जानने का यहॉ प्रयास करते हैं। यदि दोनों ग्रह ही वक्री या मार्गी हों तो उनके एक दिन में अन्तर गत्यन्तर तुल्य होने से यदि ग्रहों के गत्यन्तर तुल्य अन्तर से ग्रहों की पृथक्-पृथक् गतिकला के समान चलन प्राप्त होता है तो अभीष्ट ग्रहान्तर कलाओं में क्या। इस अनुपात से ग्रहान्तर कला सम्बन्धि अलग-अलग ग्रह का चालन - $\frac{\text{ग्रहगतितुल्य चलन} \times \text{इष्टग्रहान्तर}}{\text{गतियोगतुल्यान्तर}}$

योग के गति होने पर मार्गी ग्रह आगे एवं वक्री ग्रह पीछे होता है। इसलिए चालन फल को मार्गी ग्रह में से घटाया एवं वक्री ग्रह में जोड़ा जाता है। योग गम्य आगामी होने पर मार्गी ग्रह पीछे एवं वक्री ग्रह आगे होता है। इसलिए मार्गी ग्रह में जोड़ने से एवं वक्री ग्रह में से घटाने पर दोनों ग्रह समान होंगे।

गतैष्य दिनादि साधन की उपपत्ति - एक दिन में युति करने वाले दो ग्रहों का अन्तर गत्यन्तर तुल्य या गति योग तुल्य होता है। यदि गत्यन्तर कलाओं से या गति योग कलाओं से एक दिन हो तो अभीश्ट ग्रहान्तर कलाओं से क्या। इस अनुपात से अभीश्ट ग्रहान्तर सम्बन्धि दिनादिफल - ग्रहान्तरं/गत्यन्तरं, या गतियोग। यदि योग गत हो तो इतने दिन पूर्व युति हो गयी एवं गम्य योग होने पर इतने बाद में युति होगी यह उपपन्न हुआ। लेकिन इस अनुपात से चालन फल तभी सही होगा जब युति अभीश्ट दिन के लगभग हों अन्यथा ग्रह गति प्रतिदिन की विलक्षण होने से अनुपात एवं उसका फल वास्तविक होता है अतः असकृत्कर्म से ही इसके सही होने की सम्भावना होती है, इसका अधिक विस्तार करने की आवष्यकता नहीं है यही पर्याप्त है।

सिद्धान्तशिरोमणि में कथित युतिकालज्ञान -

दिवौकसोरन्तरलिप्तिकौघाद्गत्योर्वियोगेन हृताद्यदैकः।
वक्री जवैक्येन दिनैरवाप्तैर्याता तयोः संयुतिरल्पभुक्तौ।।

अर्थात् अभीष्ट दिन के दो ग्रहों का अन्तर ज्ञात करके उसको दैनिक गति के अन्तर से विभक्त करने से और यदि उनमें से एक वक्री हो तो उनकी दैनिक गति के योग से विभक्त करने से उनकी युति होने का समय प्राप्त होता है। यदि अल्प गति ग्रह दूसरे ग्रह से अल्प हो तो दोनों ग्रहों की युति हो चुकी होती है। यदि दोनों ग्रह वक्री हो और उनमें से अल्पगति ग्रह दूसरे अल्प हो तो उनकी युति आगे होगी अन्यथा होने पर युति हो चुकी होती है।

उपपत्ति - यदि दोनों ग्रह एक दिशा में चल रहे हों तो उनकी गति का अन्तर उनके प्रतिदिन का अन्तर होता है। यदि एक आगे पूर्व की ओर जाता हो तथा दूसरा दूसरी दिशा में पीछे पश्चिम की ओर जाता हो तो उनकी गति का योग दोनों के बीच प्रतिदिन का अन्तर होगा। अतः उनका अनुपात करते हैं कि यदि एक दिन में दोनों ग्रहों में इतना अन्तर होता है तो दोनों ग्रहों की स्थिति की अन्तर कला में कितने दिन होंगे? लब्ध दिन संख्या युति के दिनों की संख्या होगी। यदि अल्पगति ग्रह अथवा वक्री अल्प गति ग्रह दूसरे ग्रह से न्यून हो तो उसका दूसरा ग्रह का अतिक्रम करता हुआ आगे चला गया है। यदि दोनों वक्री हो तो इससे विपरीत स्थिति होने से वे परस्पर युति करते हैं। उपरोक्त बात को और स्पश्ट करके बताते हैं। दो ग्रहों की स्थिति के अन्तर की कलाओं को उनकी गति के अन्तर की कलाओं से विभक्त करने से प्राप्त फल दिन संख्या होती है, उपर बताये अनुसार। अब यदि अधिक

गति वाला ग्रह अल्पगति वाले ग्रह से अधिक रहे तो पूर्व गत दिनों में ग्रह युति हो चुकी यह समझना चाहिये। यदि अल्पग्रति ग्रह अधिक गति ग्रह से अधिक हो तो पूर्व प्रकार से प्राप्त दिवस संख्या में ग्रह युति ऐष्य समझनी चाहिये। यदि दोनों ग्रह वक्री हों तो विपरीत होता है अर्थात गतयुति, ऐष्य होती है तथा ऐष्य युति गत युति होती है। यदि दोनों ग्रह में एक वक्री ग्रह दूसरे मार्गी से अल्प हो तो पूर्व प्राप्त दिनों में युति गत कहनी चाहिये। यदि यहॉ वक्रीग्रह अधिक हो तो युति ऐष्य समझनी चाहिये।

युति साधन का उद्देश्य -

भावाभावाय लोकानां कल्पनेयं प्रदर्शिता।
स्वमार्गणाः प्रयान्त्येते दूरमन्योऽन्यमाश्रिताः।।

वास्तविक रूप से ये ग्रह अपनी-अपनी कक्षाओं में गये हुए एक से दूसरा आकाष में अधिकान्तर पर स्थित होते हुए चलते रहते है। अतः उनका योग असम्भव है। लेकिन अत्यन्त दूर होने पर भी युतिकाल में दोनों ग्रह एक ही जगह गये हुए दिखाई देते हैं। उन ग्रह योग का दर्शन लोगों के लिए यथासम्भवशुभाशुभ फल देते हैं। इसीलिए सूर्यांशपुरूष ने लोगों के लिए शुभाशुभ फल के ज्ञान के लिए इन ग्रहों की युति की कल्पना प्रस्तुत की है। ग्रहयुति भेदों के फल संहिता ग्रन्थों में विस्तार से वर्णित है।

ग्रहयुतिसाधन में विशेषता -

तात्कालिकौ पुनः कार्यौ विक्षेपौ च ततस्तयोः।
दिक्तुल्ये त्वन्तरं भेदे योगः षिश्टं ग्रहान्तरम्।।

दृक् कर्मसंस्कृत दो ग्रहों के अन्तरवश पुनः ग्रहान्तर कलाओं को अपनी-अपनी गति की कलाओं से गुणा करके करने के प्रकार में कहे गये तरीके से युतिकाल के युतिकारक दोनों ग्रहों को करके फिर उन दोनों युतिकालिक ग्रहों से पूर्वोक्त रीति से षर साधन करें, दोनों युतिकारक ग्रहों का शर एक ही दिशा का होने पर उनका अन्तर तथा भिन्न दिशाओं का होने पर उनका योग करना चाहिए। इस प्रकार से योग या अन्तर करने पर जो आवे वह एक ही कदम्ब प्रोतवृत्त में उन दोनों ग्रहों का दक्षिणोन्तर अन्तर होता है।

युतिकाल में राशि, अंश, कला विका में दो ग्रहों के समान होने से उन दोनों को क्रान्तिवृत्त में एक ही स्थान होता है। उन दोनों के शर एक कदम्बप्रोतवृत्त गत होते हैं। अतः उन दोनों के शर एक दिशा के होने पर उन दोनों के शरों का अन्तर करने पर तथा भिन्न दिशाओं के होने पर दोनों शरों का योग करने पर जो हो वही उन दोनों ग्रहों का दक्षिणोन्तरान्तर होता है। जब यह दक्षिणोत्तरान्तर परमाल्प हो तो पूर्वापर अन्तर का अभाव होने से उन दोनों ग्रहों की युति सिद्ध होती है।

लेकिन कदम्ब सूत्र में ही उन दोनों ग्रहों का दक्षिणोत्तरान्तर परमाल्प होता है। इस कथन में प्राचीन आचार्यो को सन्देह है युति नाम ही जब आकाष में दोनों का अत्यन्तर अल्पान्तर जो प्रायः कदम्ब सूत्र में दोनों ग्रहों के स्थित होन पर ही होता है। इस भास्कर वचन में प्रायः पद का उपादान जाना जाता है। अतः ग्रहण में जब कल्पित विमण्डल में भूभा एवं चन्द्र बिम्ब का परमाल्पान्तर साधित किया जाता है। उसी तरह अन्य ग्रहों में से एक को स्थिर मानकर उस से दूसरे के कल्पित विमण्डल में जो लम्ब होता है वहॉ उन दोनों का परमाल्पान्तर समझना चाहिए।

भूमौग्रहयुति दर्शन -

छायाभूमौ विपर्यस्ते स्वच्छायाग्रे तु दर्शयेत्।
ग्रहः स्वदर्पणान्तः स्थः शंक्वग्रे सम्प्रदृश्यते।।

अर्थात् छाया साधन के लिए जो भूमि काम में ली जाती है उसी को छाया भूमि कहते हैं। छायाभूमि को पानी की सतह के समान समतल कर विपरीत दिशा में स्वछायाग्र पर ग्रह को दिखाना चाहिए। इसका आषय है कि समतल की गई भूमि पर दिक् साधन कर के गणित से आयी हुई छाया को पूर्वकपाल में ग्रह होने पर पश्चिमाभिमुख, एवं परकपाल में ग्रह होने पर पूर्वाभिमुखी ग्रहछाया को दिक्मध्य से ग्रह कपाल मुख की ओर देनी चाहिए। वहॉं से छायाग्रगत में दर्पण में या जल में ग्रह के प्रतिबिम्ब को दिंगमध्यगत शंकु के अग्र भाग से छायाकर्णमार्ग से नीचे दृष्टि से दिखाना चाहिए।

स्वछायाग्र में स्वदर्पण के अन्तर स्थित ग्रह का प्रतिबिम्ब शंक्वग्र में लगा हुआ दिखाई देता है। अर्थात् शंकु शीर्ष लग्नछायाकर्ण मार्ग से छायाग्रत दृष्टि से शंकु के अग्रभाग पर गये हुए जैसे ग्रह बिम्ब को लोग देखते हैं।

अपसव्ये विग्रहं बू्रयात् संग्रामं रश्मिसंकुले।
लेखनेऽमात्यपीड़ा स्यात् भेदने तु धनक्षयः।।

मंगलादि पॉच ताराग्रहों का बिम्ब छोटा होने के कारण इन्हें तारा ग्रह कहा जाता है। इन पॉचों तारा ग्रहों में से किन्हीं दो के स्पर्श होने मात्र से इनका उल्लेख नामक युद्ध कहलाता है।

युतिकाल में यदि दोनों युतिकारक ग्रहों का शरान्तर मानैक्यखण्ड तुल्य हों तो उन दोनों ग्रहों के बिम्ब के स्पर्श मात्र होने से उनका उल्लेख नाम का युद्ध कहना सार्थक ही है।

भेद युद्ध - दो तारा ग्रहों में भेद होने पर भेद कहा जाता है। उन दोनों युतिकारक ताराग्रहों के मानैक्यार्ध से कम शरान्तर होने से एक ग्रह का बिम्ब दूसरे ग्रह के बिम्ब को ग्रहण के जैसे ढक लेता है अतः उसका भेद युद्ध नाम रखा जाना भी सही है।

अंशुविमर्दाख्य युद्ध- दोनों युतिकारक ग्रहों के आपस में किरणों का योग होने पर अर्थात् उन दोनो

का शरान्तर मानैक्यार्ध से अधिक होने पर भी आपस में उन दोनों की किरणें मिलती है। अतः इसे अंशु विमर्दाख्य नामक युद्ध कहा जाता है। जो उचित है।

अपसव्य युद्ध - दोनों ग्रहों का युतिकारकों का शरान्तर 1 अंष अर्थात् 60 कला से कम होने पर परन्तु दोनों का मानैक्यार्ध अधिक होने पर यदि एक ग्रह का बिम्ब लघु हो तो अपसव्य नामक उन दोनों ग्रहों का युद्ध होता है। लघु बिम्ब को महद् बिम्ब द्वारा आक्रामित किये जाने से इस युद्ध को अपसव्य युद्ध कहा जाना उचित ही है।

समागम युद्ध - दोनों ग्रहों के बिम्ब महान हों तथा दोनों ग्रहों का शरान्तर एक अंश से अधिक हों तो उन दोनों का समागम नामक युद्ध होता है। युद्ध कहे जाने में कोई आश्चर्य नहीं है।

भार्गव के अनुसार युद्धों के फल - यदि ग्रहों का अपसव्य युद्ध हो तो प्रजा में विग्रह, अंशुविमर्दाख्य युद्ध होने पर परस्पर युद्ध उल्लेख नामक युद्ध हो तो मन्त्री को पीड़ा भेद युद्ध होने पर धनक्षय होता है।

3.4 पात विचार

सर्वप्रथम यह प्रश्न उठता है कि पात किसे कहते हैं? इसका उत्तर है कि जो लोगों के मांगलिक कार्यों को गिराता है, उसे पात कहते हैं। पात की उत्पत्ति सूर्य एवं चन्द्रमा के कारण होती है। सूर्य एवं चन्द्रमा की समान क्रान्ति होने पर उनकी स्थित से नाम के अन्तर अभाव होने से विभिन्न तरह के पात होते हैं। पात के अनेक लक्षण भी होते हैं।

वैधृतिव्यतीपात लक्षण -

एकायनगतौ स्यातां सूर्याचन्द्रमसौ यदा।
तद्युतौ मण्डले क्रान्त्योस्तुल्यत्वे वैधृताभिधः।।
विपरीतायन गतौ चन्द्रार्कौ क्रान्ति लिप्तिकाः।
समास्तदा व्यतीपातो भगणार्धितयोर्युतौ।।

जब सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों उत्तरायण या दक्षिणायन एक ही अयन में हो तो उन दोनों के राश्यात्मक सूर्य एवं चन्द्र को जोड़ने पर यदि योग १२ राशि के बराबर हो, उन दोनों की क्रान्ति भी से समान हो तो वैधृत नामक पात होता है। चन्द्रमा एवं सूर्य दोनों में से सूर्य यदि उत्तरायण में हो तो चन्द्र दक्षिणायन में हो तथा चन्द्र उत्तरायण में हो तो सूर्य दक्षिणायन में हो तो सूर्य एवं चन्द्र दोनों के राश्यात्मक योग करने पर जो आये वह यदि ६ राशि के समान हो तथा उन दोनों की क्रान्ति की कलायें भी समान हो तो व्यतीपात नाम का पात होता है। इसका आशय है कि एक ही अयन एवं गोल में क्रान्ति समान होने पर भी पात नहीं होता है।

भास्कराचार्य जी का मत –

व्यतीपातोऽयनभेद गोलैकत्वेऽर्कचन्द्रयो: क्रान्त्यो:।
साम्येवैधृत एकायनेऽन्यदिगपक्रम समत्वे।।

अर्थात् सूर्य एवं चन्द्र की क्रान्ति बराबर होने का नाम पात है। सायन मेष एवं सायन तुलादि से क्रान्ति की गणना होती है। सूर्य एवं चन्द्र की क्रान्ति बराबर होने पर उन दोनों की भुज भी समान होती है। और जब सूर्य एवं चन्द्र समान होते हैं एवं उनकी भुज भी समान होती है तो दोनों की क्रान्ति बराबर होती ही है।

पात का अशुभफल –

तुल्यांशु जालसम्पर्कात् तयोस्तु प्रवहाहत:।
तद्दृकक्रोधभवो वह्निर्लोकाभावाय जायते।।

सूर्य एवं चन्द्रमा की क्रान्ति जिस समय समग्र हो उस समय सूर्य एवं चन्द्रमा की समान किरणों के आपस में मिलने के कारण से सूर्य एवं चन्द्रमा की केन्द्र रूपी दृष्टियों के एक दूसरे के सामने होने से उनका अत्यन्त तेज होता है। यह तेज ही 'अग्निरूप पात' होता है। जिसे खगोल में बहने वाली प्रवह नामक वायु और अधिक प्रदीप्त कर देती है, जिससे यह पात संसारवासियों के लिए अशुभफल का संकेत देने वाला होता है। इसका आशय हुआ कि यह जो वह्निपात है वह संसार के प्राणियों के लिए अमंलकारी होता है। इसीलिए मांगलिक कार्यों में इन पातों का त्याग कर देना चाहिए ऐसा कहा गया है। वास्तविक रूप में चन्द्रमा में स्वयं का तेज तो होता ही नहीं है वह सूर्य की किरणों के संयोग से ही प्रकाशित होता है। खगोल की दृष्टि से देखने पर सूर्य एवं चन्द्र की कक्षाओं के उध्वधि: अन्तर के अत्यधिक होने के कारण सूर्य एवं चन्द्र की समान किरणों का योग तो किसी भी स्थिति में संभव नहीं है। परन्तु संहिताकारों ने अपने संहिता ग्रन्थों में सूर्य एवं चन्द्र दोनों की क्रान्ति समान होने पर ही अशुभफल की कल्पना की है।

पात का स्वरूप –

स कृष्णो दारूणवपुर्लोहिताक्षो महोदर:।
सर्वानिष्करो रौद्रो भूयो भूय: प्रजायते।।

अर्थात् पात अग्निपुरूष जैसा है, इसका रंग काला है, विकराल शरीर है, लाल नेत्र है, लम्बा उदर है, अत्यन्त भयानक है। संसार के समस्त जीव जन्तुओं के लिए अनिष्टकारक है। प्राय: एक मास में दो बार यह पात होता है। यहॉ सूर्य एवं चन्द्रमा की क्रान्ति बराबर होने पर जो पात कहा गया है वह एक चान्द्रमास (शुक्लपक्ष प्रतिपदा से अमान्त तक) में दो बार सूर्य एवं चन्द्र की क्रान्ति समान होने से

होता है। परन्तु चन्द्रमा की स्पष्ट क्रान्ति एवं सूर्य की स्पष्ट क्रान्ति नियम से समान नहीं होती, इसका कारण चन्द्र शर है। इसीलिए जब सूर्य एवं चन्द्र की क्रान्ति बराबर होने से जो स्पष्ट पात होता है, उसका कोई समय निश्चित नहीं है।

पात की स्थिति काल का फल –

आद्यन्त कालयोर्मध्य: कालो ज्ञेयोऽतिदारूण:।
प्रज्वलज्जवलनाकार: सर्वकर्मसु गर्हित:।।
एकायनगतं यावदर्केन्द्वोर्मण्डलान्तरम्।
सम्भवस्तावदेवास्य सर्वकर्म विनाशकृत्।।
स्नानदानजयश्राद्धव्रतहोमादिककर्मभि:।
प्राप्यते सुमहच्छेयस्तत् कालज्ञानतस्तथा।।

अर्थात् पात के आदि काल एवं अन्त के बीच के काल को पात का मध्यकाल कहते हैं एवं यह पात का जो मध्यकाल होता है वह अत्यन्त कठिन फल देने वाला होता है। अर्थात् दुष्ट फल देता है। यह पात का जो मध्यकाल है, वह धधकती हुई आग के समान होन से सभी विवाहादि शुभ कामों में निन्दित है। सूर्य एवं चन्द्र दोनों के बिम्बों की केन्द्रीय क्रान्ति समान होने का समय सूक्ष्म मध्यकाल होने से निन्दित है। अथवा समस्त पात स्थिति का काल निन्दित है। सूर्य एवं चन्द्र दोनों के बिम्बों का जिस समय एक रूप जैसा जितने समय तक रहे, एक ही मार्ग में उत्तरायण या दक्षिणायन में होता है तब तक अर्थात् जब सूर्य एवं चन्द्र दोनों के बिम्बों का एक ही जगह पर जब क्रान्त्यन्तर उन दोनों के मानैक्यार्ध तुल्य हों तब तक ही यह पात मध्यकाल सम्भव है। वह पात काल सभी का विनाश करने वाला होता है। इसी कारण से से समस्त पात के समय स्थिति को शुभ कार्यों में निन्दित माना गया है।

पात में विशेष विचार –

रवीन्द्वोस्तुल्यता क्रान्त्योर्विषुवत्सन्निधौ यदा।
द्विर्भवेद्धि तदा पात: स्यादभावोविपर्ययात्।।

नाड़ी एवं क्रान्ति वृत्तों के योग होने के स्थान के समीप में जब सूर्य एवं चन्द्र की क्रान्ति दो बार समान हो तो निश्चित रूप से पात होता है। यदि सूर्य एवं चन्द्र की क्रान्ति दो बार बराबर न हो तो पात का अभाव होता है अर्थात् तब पात नहीं होता।

अभ्यास प्रश्न –

1. द्वयोः ग्रहयोरन्तराभावस्य नाम किम्?

क. व्यतीपात ख. युति: ग. पात: घ. वैधृति

2. छाया साधन के लिए जो भूमि काम में ली जाती है उसे क्या कहते हैं

   क. छाया भूमि ख. भूभा ग. व्यतीपात घ. अपसव्य

3. जो लोगों के मांगलिक कार्यो को गिराता है, उसे क्या कहते हैं?

   क. पात ख. युति ग. ग्रहयुति ध. वैधृति

4. निम्न में पात में कारक होते हैं?

   क. चन्द्रमा ख. सूर्य ग. सूर्य-चन्द्र घ. भौम

5. पात के आदि काल एवं अन्त के बीच के काल को क्या कहते हैं

   क. स्पर्श काल ख. पात का मध्यकाल ग. मोक्ष काल घ. कोई नहीं

3.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि जिन दो ग्रहों की युति के बारे में विचार करना हो उनमें से जिस ग्रह की गति अधिक हो, उस ग्रह के मन्दगति वाले ग्रह से आगे रहने पर उन दोनों मन्दगति एवं शीघ्रगति वाले ग्रहों की युति पहले ही हो जाती है। अन्यथा शीघ्रगति वाला ग्रह मन्दगति वाले ग्रह से कम हो तो (उन दोनों ग्रहों मन्द गति एवं शीघ्र गति वाले का) संयोग आगे होगा। ऐसा जानना चाहिये। लेकिन इस तरह से विचार तभी होता है जब दोनों ग्रह मार्गी हों। वक्र गति वाले ग्रहों में युति इससे विपरीत समझना चाहिये। अर्थात् वक्र गतिवाला शीघ्रगति ग्रह मन्दगति वाले ग्रह से कम हों तो उन दोनों ग्रहों की युति पूर्व में ही हो जाती है एवं शीघ्र गति वाला ग्रह मन्द गति वाले ग्रह से आगे हो तो उनकी युति आगे होगी।

जिन दो ग्रहों की युति का विचार करना हो उनमें से एक ग्रह मार्गी एवं दूसरा वक्री हो तो उसकी वक्रगति होने के कारण मार्गगति वाले ग्रह से अधिक होने पर उन दोनों ग्रहों की युति मार्गी एवं वक्री की पहले ही हो जाती है। वक्रगति वाला मन्द ग्रह शीघ्रगति वाले मार्गी ग्रह से आगे होने पर उन दोनों ग्रह की युति आगे होगी। ऐसा जानना चाहिये।

स्पष्ट ग्रह ही मनुष्यों द्वारा देखे जाने योग्य होने के कारण उनकी स्पष्ट गति ही ग्रहण करनी चाहिए।

ग्रहों की भिन्न-भिन्न गति होने के कारण से जिन दो ग्रहों की युति का विचार करते हैं उनमें से कोई एक मन्द गति वाला तथा दूसरा शीघ्र गति वाला होगा ही। इसीलिए उन दोनों ग्रहों के मार्गी होने के कारण शीघ्र ग्रह यदि मन्द ग्रह से अधिक हो तो वह शीघ्रगति वाला ग्रह मन्दगति वाले ग्रह के साथ योग करके आगे गया हुआ होने से उनका योग गत हो चुका अर्थात् उनकी युति पहले ही हो गई, यह स्पष्ट हुआ।

यदि शीघ्र गति ग्रह मन्द गति ग्रह से कम हो तो मन्द गति ग्रह से पीछे होने के कारण शीघ्र गत ग्रह

अधिक गति से चलता हुआ मन्दगति वाले ग्रह के साथ योग करेगा, इससे उनका योग आगे होगा यह स्पष्ट हुआ। यदि मन्दगति एवं शीघ्रगति वाले दोनों ग्रह ही वक्री हों तो वे दोनों ही वक्री गति होने से पश्चिम की ओर चलते हैं। तब शीघ्र ग्रह मन्दगति वाले ग्रह से कम होने पर शीघ्र गति वाला वक्री ग्रह तेज गति से चलता हुआ मन्दगति वाले वक्री ग्रह को पकड लेगा अर्थात् उसके समान हो जायेगा, अतः उन दोनों वक्री ग्रहों की युति आगे होगी। यह सिद्ध हुआ। यदि इन दोनों ग्रहों में एक ग्रह मार्गी एवं दूसरा ग्रह वक्री हो तो उन दोनों में वक्री ग्रह के मार्गी ग्रह से अधिक होने से पश्चिम की ओर चलता हुआ वक्री ग्रह, पूर्व की ओर चलते हुए मार्गी ग्रह से आने वाले समय में योग करेगा। इसलिए दोनों का योग भावी होगा यह सिद्ध हुआ।

यहॉं राशियों को पूर्वादि क्रम से स्थापित करने से ऐसा है। राश्यादि मान से ग्रह कम या अधिक होने की कल्पना किये जाने के कारण किसी समय मीन राशि में ग्रह होगा तो यह ग्रह मेष राशि में स्थित ग्रह की अपेक्षा अधिक माने जाने में आपत्ति होगी। इसलिए जो ग्रह अधिक पूर्व में होगा वह अधिक तथा पश्चिम में होने वाले ग्रह को न्यून माना जायेगा परन्तु यह 6 राशियों के अन्तर पर ही जानना चाहिए।

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

युति – द्वयो: ग्रहयोरन्तराभावस्य नाम युति:।

पात – जो लोगों के मांगलिक कार्यों को गिराता है, उसे पात कहते हैं।

वैधृति – वैधृति पात का ही रूप है। जब सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों उत्तरायण या दक्षिणायन एक ही अयन में हो तो उन दोनों के राशयात्मक सूर्य एवं चन्द्र को जोड़ने पर यदि योग१२ राशि के बराबर हो, उन दोनों की क्रान्ति भी से समान हो तो वैधृत नामक पात होता है।

व्यतिपात – व्यतिपात भी पात का ही रूप है। जब सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों में से सूर्य यदि उत्तरायण में हो तो चन्द्र दक्षिणायन में हो तथा चन्द्र उत्तरायण में हो तो सूर्य दक्षिणायन में हो तो सूर्य एवं चन्द्र दोनों के राश्यात्मक योग करने पर जो आवे वह यदि योग ६ राशि के बराबर हो, उन दोनों की क्रान्ति भी समान हो तो व्यतीपात नामक पात होता है।

दृग्ग्रह – दिखलाई पड़ने वाला ग्रह।

शर – दूरी।

क्रान्तिवृत्त- कदम्ब से ९० अंश से निर्मित होने वाला वृत्त।

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – की उत्तरमाला

1. ख 2. क 3. क 4. ग 5. ख

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) सिद्धान्तशिरोमणि – मूल लेखक – भास्कराचार्य, टीका – कृष्णचन्द्रद्विवेदी।

(ख) सूर्यसिद्धान्त – टिकाकार – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय।

(ग) सूर्यसिद्धान्त – टिकाकार – गणपति लाल शर्मा

(घ) ग्रहलाघवम् – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

(ड.) ग्रहलाघवम् - केदारदत्त जोशी

3.9 सहायक पाठ्यसामग्री

सूर्यसिद्धान्त – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

सिद्धान्तशिरोमणि – डॉ0 सत्यदेव शर्मा

ग्रहलाघवम् – टिकाकार- प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

सूर्यसिद्धान्त – गणपति लाल शर्मा

सिद्धान्ततत्वविवेक – मूल लेखक – कमलाकर भट्ट, टिका – कृष्णचन्द्रद्विवेदी।

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ग्रहयुति से क्या तात्पर्य है?
2. पात किसे कहते हैं? स्पष्ट लेखन कीजिये।
3. पात स्वरूप एवं काल का वर्णन कीजिये।
4. ग्रहयुति विचार में गतैष्य दिनादि का साधन कीजिये।
5. भूमिग्रहयुतिदर्शन प्रकार का उल्लेख कीजिये।
6. वैधृति- व्यतिपात का लक्षण लिखिये।

इकाई - 4 दृक्कर्म परिचय

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 दृक्कर्म परिचय
4.4 दृक्कर्म में विशेष
4.5 पारिभाषिक शब्दावली
4.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.8 सहायक पाठ्यसामग्री
4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -504 के द्वितीय खण्ड की चतुर्थ इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – दृक्कर्म परिचय। इससे पूर्व आपने चन्द्रश्रृंगोन्नति, ग्रहोदयास्त, ग्रहयुति एवं पात से जुड़े विषयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप दृक्कर्म के बारे में अध्ययन करने जा रहे है।

'दृक्कर्म' का सम्बन्ध ग्रहों के उस स्थिति से है, जिसके संस्कारोपरान्त ग्रह दृश्यानुरोधेन स्पष्ट हो जाता है। इसीलिए दृक्कर्म को परिभाषा करते हुए कहते है कि – दृश: कर्म: दृक्कर्म:। इसके ज्ञान से ज्योतिष शास्त्रानुरागियों को ग्रहों का सम्यक् ज्ञान हो सकेगा।

आइए इस इकाई में हम लोग 'दृक्कर्म' के बारे में उसकी गणितीय पक्ष एवं सिद्धान्तों को जानने का प्रयास करते है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- दृक्कर्म को परिभाषित कर सकेंगे।
- दृक्कर्म को समझा सकेंगे।
- 'दृक्कर्म' की विभिन्न स्थितियों को जान लेंगे।
- दृक्कर्म का महत्व प्रतिपादित कर सकेंगे।

4.3 दृक्कर्म परिचय

सर्वप्रथम दृक्कर्म का प्रयोजन क्या है? आइए इसको समझने का प्रयास करते हैं।

नक्षत्र एवं ग्रह की युति, दो ग्रहों की युति, ग्रह के उदयास्त साधन में, चन्द्रमा की श्रृंगोन्नति साधन में दृक्कर्म का संस्कार यथासम्भव पहले ही कर लेना चाहिये, ऐसा पूर्व में में बतलाया गया है। इसका आशय है कि दृक्कर्म से संस्कार किये जाने पर ही नाक्षत्र एवं ग्रह तथा दो ग्रहों की युति का भी विचार किया जाता है।

गणितीय दृष्टिकोण से क्रान्तिवृत्त स्थान से शराग्रगत दोनों की युति तो एक कदम्ब प्रोतवृत्त दोनों होने पर ही उनके अन्तर का अभाव होता है। क्रान्तिवृत्त में तिरछे रूप में कदम्ब प्रोतवृत्त होता है। परन्तु कदम्ब की दोनों तारायें अत्यन्त सूक्ष्म होने से दिखाई न दे पाने से विपुलताराश्रित ध्रुवप्रोतवृत्त में दोनों के गये हुए होने से ही भास्करादि ने उनकी युति ध्रुवप्रोतवृत्त में कही है, अत: ग्रहों की युतियों में केवल आयनदृक्कर्म की आवश्यकता होती है। परन्तु वास्तविक युति तो उन दोनों की (नक्षत्र एवं ग्रह की अथवा दोनों ग्रहों की) कदम्ब सूत्र में स्थित होने पर ही होती है। भास्कराचार्य का भी यही कथन

है। वासना भाष्य इसलिए कहा है – कदम्ब में प्रसिद्ध ताराओं का अभाव होने से देखने वाले को इस युति की प्रतीति नहीं हो पाती अत: ध्रुव सूत्र में ही युति कही है। युति प्राय: कदम्ब सूत्र में स्थित होने वाले दो की ही होती है। ग्रह के उदयास्त साधन करने में स्थानीय ग्रह को समप्रोतवृत्त का करने के लिए स्पष्ट दृक्कर्म की आवश्यकता होती है। अत: उक्त कर्मों (ग्रह एवं नक्षत्र की युति, दो ग्रहों की युति, ग्रहों के उदयास्त, चन्द्रश्रृंगोन्नति आदि साधन में) दृक्कर्म संस्कार किया जाना युक्तिसंगत है। दृक्कर्म किसे कहते है? दृश: कर्म: दृक्कर्म:। अर्थात् ग्रहों की वास्तविक स्थिति को दृश्य योग्य बनाने हेतु जो कर्म करते करते हैं, उसका नाम है – दृक्कर्म। यह मुख्यत: दो प्रकार का होता है – 1. अयन दृक्कर्म 2. आक्ष दृक्कर्म। ध्रुवप्रोत-समप्रोतवृत्त का अन्तर आक्ष दृक्कर्म तथा ध्रुवप्रोत-कदम्बप्रोत का अन्तर अयन दृक्कर्म कहलाता है। दोनों के संस्कार से स्फुट दृक्कर्म होता है।

दृक्कर्म साधन के लिए उपकरण –

कृत्वा दिन क्षपामानं तथा विक्षेपलिप्तिका:।
नतोन्नतं साधयित्वा स्वकाल्लग्नवशात्तयो:।।

युतिकाल के दोनों ग्रहों से अपनी-अपनी क्रान्ति के चर पलों से दिनमान एवं रात्रिमान करके, शर की कलायें साधित कर, सायन सूर्यादि ग्रह से एवं सायन लग्न से उन दोनों ग्रहों के नतोन्नत को साधित कर अलग रख लें। जैसे सायन सूर्य एवं लग्न से इष्टकाल साधित करते हैं, उसी तरह युतिकाल में भी सायन ग्रह एवं लग्न से इष्टकाल साधित कर यथासम्भव दिनगत, दिनशेष या उन्नत, उसको घटाकर दिनार्ध और नत को जानकर, इसी तरह रात्रि में भी नतोन्नत का ज्ञान कर रख लेना चाहिए।

आक्षदृक्कर्म साधन एवं संस्कार –

विषुवच्छाययाऽभ्यस्ताद् विक्षेपाद् द्वादशोद्धृतात्।
फलं स्वनतनाडीघ्नं स्वदिनार्धं विभाजितम्।।
लब्धं प्राच्यामृणं सौम्ये विक्षेपे पश्चिमे धनम्।
दक्षिणे प्राक्कपाले स्वं पश्चिमे तु विपर्यय:।।

पूर्वसाधित शर को पलभा से गुणाकर १२ का भाग दें जो भागफल आवे उससे पूर्वसाधित नत काल की घटियों को गुणा करें गुणनफल में दिन का गत काल होने पर दिनार्ध से एवं रात्रि का नतकाल होने पर रात्रयर्ध मान का भाग दें जो भागफल आवे उसी उत्तरीशर होने पर पूर्वकपाल में ऋण एवं पश्चिमी कपाल में धन तथा दक्षिणी शर होने पर पूर्वकपाल में धन एवं पश्चिमी कपाल में विपरीत अर्थात् ऋण करना चाहिए।

उपपत्ति: - गणितेन साधितो ग्रह: क्रान्तिवृत्तीयो राश्यादिको भवति। सूर्यातिरिक्त सर्वेग्रहा: वेधोपलब्धा: क्रान्तिवृत्ताच्छराग्रे स्व-स्वविमण्डले भ्रमन्ति। यदा क्रान्तिवृत्तस्थानामुदयास्तौ

भवतस्तदानीं शराग्रगतानामुदयोस्तौ। यदा क्रान्तिवृत्तस्थं ग्रहस्थानं क्षितिजमागच्छति तदा शराग्रस्थो ग्रह: क्षितिजादुपर्यधो वा शरवशाद्भवति। यदाकदम्ब स्थानं क्षितिजगतं स्यात्तदा कदम्बप्रोतवृत्तं क्षितिजवृत्तमेव भवति, तदा स्थानं बिम्बं च तुल्यकालमेवक्षितिजस्थे भवत:। अन्यथा कदम्बप्रोतवृत्तस्य क्षितिजादन्तरित्वाद् ग्रहगतकदम्बप्रोत सम्प्रोतवृत्तयोरन्तरं क्रान्तिवृत्ते। यत् तेन ग्रहोऽन्तरितो भवति। अतएव ग्रह गतकदम्ब समसूत्रयो: क्रान्तिवृत्ते यदन्तरं तस्यैव नाम दृक्कर्म:।

भास्करेणोक्तम्—

क्रान्तिवृत्ते ग्रहस्थानचिह्नं यदा स्यात् कुजे नो तदा खेचरोऽयं यतः।
स्वेषुणोत्क्षिप्यते नाम्यते वा कुजात् तेन दृक्कर्म खेटोदयास्ते कृतम्।।

दृक्कर्मं द्विविधम्। तत्र प्रथमस्तु ध्रुव प्रोत–समप्रोतवृत्तयोरन्तरमाक्षजं दृक्कर्मः। द्वितीयस्तु ध्रुव प्रोतवृत्त–कदम्बप्रोतवृत्तयोरन्तरमायन दृक्कर्मं भवति! अनयोः संस्कारेण समप्रोत–कदम्बप्रोतवृत्तयोरन्तरं स्पष्ट दृक्कर्मं वलन तुल्यं भवति।

आक्ष दृक्कर्मः— क्रान्तिवृत्ते ध्रुवप्रोतवृत्त–समप्रोतवृत्तयोरन्तरे आक्ष दृक्कर्म कलाः।

क्षेत्र परिचयः —

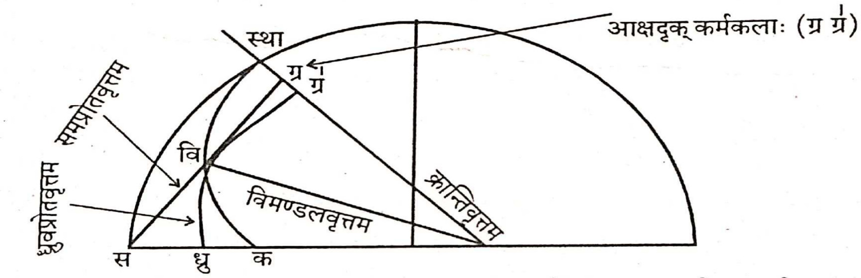

विमण्डलवृत्ते विं = ग्रह बिम्बम्। विमण्डलवृत्तीयग्रहोपरिगत ध्रुवप्रोतसमप्रोतवृत्तयोः क्रान्तिवृत्तेऽन्तरं = ग्र ग्र' = आक्षदृक्कर्म कलाः।

बिम्बगत–समप्रोत–ध्रुवप्रोत वृत्ताभ्यामुत्पन्नकोणस्याक्षवलन–कारणात् ज्या ∠ ग्र विं ग्र' = आक्षवलन ज्या। बिम्बगतं ध्रुवप्रोतवृत्तं क्रान्ति वृत्ते यत्र लगति तत् "ग्र" स्थानं क्रान्तिवृत्ते आयनदृक्कर्मसंस्कृतग्रहस्थानम्। तेन ज्या ∠विं ग्र ग्र' = 'ग्र' ग्रहस्यायनवलन कोटिज्या। ततः "वि ग्र ग्र'" त्रिभुजे कोणानुपातेन ज्या ग्र

ग्र' = ज्या आक्ष दृक् कर्म = (ज्या विं ग्र ×∠ज्या वि ग्र) / (ज्या ∠वि ग्र ग्र) =

(ज्या विं ग्र ×ज्या आक्षवलन) / (को ज्या ग्र आयनवलन) ....(१)

ज्या विं ग्र' = समप्रोतवृत्तीयशरज्या। शरकलानामत्यल्पत्वात् समप्रोत-ध्रुवप्रोत कदम्बप्रोतवृत्तीयशरकलास्तुल्या ; एव स्वीक्रियन्ते तदा विं ग्र' = शरकलाः।

लघुज्याविधिना शरज्या = ज्या विं ग्र' = (शरकला × २) / ६० ....(२)

Scanned with CamScanner

पूर्वोक्त्या आक्षवलन ज्या = $\frac{\text{ज्या अ} \times \text{ज्या स न}}{\text{द्यु}}$ । अत्रापि ज्या स न = $\frac{९० \times \text{न घ} \times २}{\text{दिनार्ध}}$ । ∴ आक्षवलन ज्या = $\frac{\text{ज्या अ} \times ९० \times २ \times \text{न घ}}{\frac{\text{दिनमान}}{२} \times \text{द्युज्या}}$ ....(३)

यदि 'ग्र' ग्रहस्य द्युज्या = द्युं तदा ''द्युज्या–परमाल्प द्युज्या–ग्रह कोटिज्या'' इति चापज्या क्षेत्रे कोणानुपातेन कोटिज्या 'ग्र' आयनवलन = $\frac{\text{त्रिज्या} \times \text{परमाल्प द्युज्या}}{\text{द्युज्या}}$ ....(४)।

अतः २–३–४ एभिः स्वरूपैः (१) स्वरूप उत्थापिते ज्या.आक्ष दृक्कर्म =

$$\frac{\text{शरकला} \times २}{६०} \times \frac{\text{ज्या अ} \times ९० \times २ \times \text{न घ}}{\text{दिनार्ध} \times \text{द्युज्या}} \times \frac{\text{द्युं}}{\text{त्रिज्या} \times \text{परमाल्प द्युज्या}} ।$$

यतो लघुज्याविधिना ज्या भक्ता अंशास्ते च षष्टिगुणाः कला भवन्तीत्यतः—

$$\text{आक्ष दृक्कर्मकलाः} = \frac{\text{शरकलाः} \times \text{ज्या अ} \times \text{न घ} \times ९० \times २ \times \text{द्युंज्या}}{\frac{\text{दिनमान}}{२} \times \text{द्युज्या} \times \text{त्रिज्या} \times \text{परमाल्प द्युज्या}} ।$$

यदि स्वल्पान्तरात् द्युं = द्यु। तथा त्रिज्या = १२०। तदा —

$$\text{आक्षदृक्कर्मकलाः} = \frac{\text{शरकलाः} \times \text{ज्या अ} \times \text{न घ} \times ९० \times २}{\frac{\text{दिनमान}}{२} \times १२० \times \text{परमाल्प द्युज्या}} =$$

$$\frac{\text{शरकलाः} \times \text{ज्या अ} \times \text{लम्बज्या} \times \text{न घ} \times १८०}{\frac{\text{दिनमान}}{२} \times \text{लम्बज्या} \times १२० \times \text{परमाल्प द्युज्या}} ।$$ अत्र $\frac{\text{ज्या अ}}{\text{ज्या लं}} = \frac{\text{पलभा}}{१२}$

$$∴ \text{आक्षदृक्कर्म} = \frac{\text{शरकलाः} \times \text{पलभा} \times \text{न घ}}{\frac{\text{दिनमान}}{२} \times १२} \times \frac{\text{लम्बज्या} \times १८०}{१२० \times \text{परमाल्प द्युज्या}} ।$$

आचार्येण सूर्यसिद्धान्ते $\frac{\text{लम्बज्या} \times १८०}{१२० \times \text{परमाल्प द्युज्या}}$ = १, स्वीकृतम्।

$$∴ \text{आक्षदृक्कर्म कलाः} = \frac{\text{शरकलाः} \times \text{पलभा} \times \text{न घ}}{१२ \times \text{दिनार्ध}} ।$$

अतः आक्षदृक्कर्म कलानयनमुत्पन्नम्।

Scanned with CamScanner

धनर्णोत्पत्तिः— यद्य ग्रहस्योचरीयशरो भवति तदा पूर्वकपाले उत्तरीध्रुव कारणात् समस्थानस्याधोगतत्वात् समप्रोतवृत्तात् क्रान्ति वृत्ते ध्रुव प्रोत वृत्तमधोगतो भवतीत्यतो ग्रहः प्रथमं समप्रोतवृत्ते पश्चाच्च ध्रुव प्रोतवृत्ते उदेतीत्यतः फलमृणं भवति। पश्चिम कपाले प्रथमं ध्रुव प्रोतवृत्ते पश्चाच्च समप्रोत वृत्ते उदेति, अतः परकपाले उत्तरे शरे धनं भवति।

दक्षिणे शरे दक्षिणध्रुवात् समस्थानमुपरिगतं भवति। तदा पूर्वकपाले प्रथमं ध्रुवप्रोतवृत्ते तदनन्तरं समप्रोतवृत्ते उदेति, पश्चिमे कपाले प्रथमं समप्रोत वृत्ते तदनन्तरं ध्रुवप्रोतवृत्ते ग्रहो उदेति, अतस्तत्र पूर्वकपाले धनं, पश्चिमकपाले च फलमृणं क्रियते। इति युक्ति संगतम्।

दिखाई देने का कार्य ही दृक्कर्म होता है। गणित से साधित ग्रह क्रान्तिवृत्त का राश्यादि होता है। सूर्य के अलावा सारे ग्रह वेधोपलब्ध क्रान्तिवृत्त से शर से आगे अपने–अपने विमण्डलवृत्तों में भ्रमण करते हैं। जब क्रान्तिवृत्त में स्थान पर उदयास्त होता है तभी शराग्रगत का उदयास्त होता है। जब क्रान्तिवृत्त में स्थित ग्रह का स्थान क्षितिज पर आताहै तब शराग्रगतग्रह क्षितिज से ऊपर या नीचे शर के कारण से होता है। जब कदम्ब स्थान क्षितिजगत होता है तो कदम्ब प्रोतवृत्त ही क्षितिजवृत्त होता है, तब स्थान और बिम्ब एक साथ ही क्षितिज पर होते हैं। अन्यथा कदम्ब प्रोतवृत्त के क्षितिज से अन्तर पर होने से ग्रहगत कदम्ब प्रोतवृत्त एवं सम्प्रोत दोनों वृत्तों का अन्तर क्रान्तिवृत्त में उस ग्रह से अन्तर होता है। अतः ग्रहगत कदम्ब सूत्र एवं समसूत्रों का क्रान्तिवृत्त में जो अन्तर होता है उसे ही दृक्कर्म कहते हैं। इसीलिए भास्कराचार्य ने सिद्धान्त शिरोमणि में कहा है कि—

क्रान्तिवृत्त में ग्रहस्थान का जो चिह्न होगा, क्षितिज पर तब वह ग्रह नहीं होगा क्योंकि वह अपने शर द्वारा हटाया जाता है। इसीलिए ग्रह के उदयास्त में कुंजसूत्र से दृक्कर्म संस्कार किया जाता है।

दृक्कर्म संसार दो तरह का होता है। प्रथम दृक्कर्म ध्रुव प्रोतवृत्त एवं समप्रोतवृत्तों का अन्तर आक्ष दृक्कर्म होता है। दूसरा दृक्कर्म ध्रुवप्रोत वृत्त एवं कदम्ब प्रोतवृत्तों का अन्तर आयन दृक्कर्म होता है। इन दोनों के संस्कार से समप्रोत एवं कदम्ब प्रोतवृत्तों का अन्तर स्पष्ट दृक्कर्म वलन के समान होता है।

आक्ष दृक्कर्म— क्रान्तिवृत्त में ध्रुव प्रोतवृत्त–समप्रोत दोनों वृत्तों के बीच आक्षदृक्कर्मकला अन्तर के रूप में होती है।

क्षेत्र परिचय— विमण्डल वृत्त में विं = ग्रह बिम्ब है एवं विमण्डलवृत्त के ग्रह पर गये हुए ध्रुव प्रोत–समप्रोतवृत्तों का क्रान्तिवृत्त में अन्तर = ग्रं ग्रं = आक्षदृक्कर्मकला है।

CS Scanned with CamScanner

बिम्बगत समप्रोतवृत्त एवं ध्रुव प्रोतवृत्त दोनों से उत्पन्न कोण के आक्षवलन के कारण से ज्या∠विं ग्र ग्रं = "ग्र" ग्रह की अयन वलन कोटिज्या है। उस से "वि ग्रं ग्र" त्रिभुज में कोण के अनुपात से ज्या ग्र ग्र = ज्या आक्ष दृक्कर्म=

$$\frac{\text{ज्या विं ग्र} \times \angle\text{ज्या वि ग्र}}{\text{ज्या } \angle\text{वि ग्र ग्र}} = \frac{\text{ज्या विं ग्र} \times \text{ज्या आक्षवलन}}{\text{को ज्या ग्र आयनवलन}} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots(१)$$

ज्या वि ग्र = समप्रोतवृत्त की शरज्या। शरकलाओं के अत्यन्त कम होने से समप्रोत ध्रुव प्रोत–कदम्ब प्रोत वृत्त की शरकलायें समान ही स्वीकार करते है। तो वि ग्र = शर कलाः।

लघुज्या विधि से शरज्या = ज्या विं ग्र = $\frac{\text{शरकला} \times २}{६०}$ ....(२)

पूर्वोक्त आक्षवलन ज्या = $\frac{\text{ज्या अ} \times \text{ज्या स न}}{\text{द्यु}}$ । यहाँ पर भी ज्या स न =

$\frac{६० \times \text{नतघटी} \times २}{\text{दिनार्ध}}$ । ∴ आक्षवलन ज्या = $\frac{\text{ज्या अ} \times ६० \times २ \times \text{न घ}}{\frac{\text{दिनमान}}{२} \times \text{द्युज्या}}$ ....(३)

यदि 'ग्र' ग्रह की द्युज्या = द्यु तो "द्यु ज्या – परमाल्पद्युज्या – ग्रहकोटिज्या' इस चापज्या क्षेत्र में कोणानुपात से कोटिज्या 'ग्र' आयनवलन = $\frac{\text{त्रिज्या} \times \text{परमाल्पद्युज्या}}{\text{द्युज्या}}$ ....(४)।

अतः २,३,४ इन स्वरूपों को १ स्वरूप में स्थापित करने पर ज्या आक्ष दृक्कर्म =

$$\frac{\text{शरकला} \times २}{६०} \times \frac{\text{ज्या अ} \times ६० \times २ \times \text{न घ}}{\text{दिनार्ध} \times \text{द्युज्या}} \times \frac{\text{द्यु}}{\text{त्रिज्या} \times \text{परमाल्प द्युज्या}}।$$

क्योंकि लघुज्या साधन की विधि से ज्या में २ का भाग देने से अंश होते हैं उन्हें ६० से गुणा करने पर कलायें होती हैं अतः—

$$\text{आक्ष दृक्कर्मकलाः} = \frac{\text{शरकलाः} \times \text{ज्या अ} \times \text{न घ} \times ६० \times २ \times \text{द्युज्या}}{\frac{\text{दिनमान}}{२} \times \text{द्युज्या} \times \text{त्रिज्या} \times \text{परमाल्प द्युज्या}}।$$

यदि स्वल्पान्तर से द्यु = द्यु। तथा त्रिज्या = १२० हो तो —

$$\text{आक्षदृक्कर्मकला} = \frac{\text{शरकलाः} \times \text{ज्या अ} \times \text{न घ} \times ६० \times २}{\frac{\text{दिनमान}}{२} \times १२० \times \text{परमाल्प द्युज्या}} =$$

Scanned with CamScanner

$$\frac{\text{शरकलाः} \times \text{ज्या अ} \times \text{लम्बज्या} \times \text{न घ} \times १८०}{\frac{\text{दिनमान}}{२} \times \text{लम्बज्या} \times १२० \times \text{परमाल्प द्युज्या}}$$ । यहाँ $\frac{\text{ज्या अ}}{\text{ज्या लं}} = \frac{\text{पलभा}}{१२}$

$$\therefore \text{आक्षदृक्कर्म} = \frac{\text{शरकलाः} \times \text{पलभा} \times \text{न घ}}{\frac{\text{दिनमान}}{२} \times १२} \times \frac{\text{लम्बज्या} \times १८०}{१२० \times \text{परमाल्प द्युज्या}}$$ ।

आचार्येण सूर्यसिद्धान्ते $\frac{\text{लम्बज्या} \times १८०}{१२० \times \text{परमाल्प द्युज्या}} = १$, स्वीकृतम्।

$$\therefore \text{आक्षदृक्कर्म कलाः} = \frac{\text{शरकलाः} \times \text{पलभा} \times \text{न घ}}{१२ \times \text{दिनार्ध}}$$ ।

यह आक्षदृक्कर्म कला के साधन की उत्पत्ति हुई।

धन एवं ऋण की उत्पत्ति— जब ग्रह का उत्तरी शर हो तों वह पूर्व कपाल में उत्तरी ध्रुव होने के कारण सम स्थान के नीचे जाने के कारण समप्रोतवृत्त से क्रान्तिवृत्त में ध्रुव प्रोतवृत्त नीचे गया होता है अतः ग्रह पहले समप्रोतवृत्त में और बाद में ध्रुव प्रोतवृत्त में उदय होता है अतः फल ऋण होता है। पश्चिम कपाल में होने से पहले ध्रुव प्रोतवृत्त में और बाद में समप्रोतवृत्त में उदित होता है अतः पश्चिमी कपाल में उत्तरी शर होने पर फलधन करते हैं।

दक्षिणी शर होने पर दक्षिण ध्रुव से समस्थान ऊपर गत होता है। तब पूर्व कपाल में प्रथम ध्रुव प्रोतवृत्त में और उसके बाद समप्रोतवृत्त में उदित होता है। पश्चिम कपाल में होने पर पहले समप्रोतवृत्त में औश्र उसके बाद ध्रुव प्रोतवृत्त में ग्रह उदित होता है। अतः वहाँ पूर्वकपाल में धन एवं पश्चिम कपाल में फल को ऋण किया जाता है। ऐसा कथन तर्कसंकत है।

आयन दृक्कर्मानयन कथनम्—

सत्रिभग्रहजक्रान्ति – भागघ्नाः क्षेप लिप्तिकाः।
विकलाः स्वमृणं क्रान्तिक्षेपयोर्भिन्न तुल्ययोः॥१०॥

सत्रिभग्रहजक्रान्तिभागाः= स्पष्टग्रहे त्रिराशियोजनेन यः भवति तद्वशात् तस्य क्रान्तिसाध्याः। तस्य ये क्रान्त्यंशाः भवन्ति तेऽयनवलनांशाः भवन्ति। तेन अयनवलनांशैः घ्नाः क्षेपलिप्तिकाः=ग्रहस्य शरकलाः गुणिताः फलं विकलाः=आयनदृक्कर्मविकलाः भवन्ति। क्रान्ति क्षेपयोः भिन्न दिक्त्वे स्वम्=धनं, तुल्ययोः= क्रान्तिक्षेपयोः एकदिकत्वे सति ऋणं ''आयनदृक्कर्म विकलाः'' क्रियन्ते।

स्पष्ट ग्रह में ३ राशि जोड़ने पर जो आवे उसकी क्रान्ति साधन करें। जो क्रान्त्यंश आवें वे ही अयन वलनांश होते हैं। उन अयनवलनांशों से ग्रह की

Scanned with CamScanner

शरकलाओं को गुणा करें, गुणनफल आयनदृक्कर्म की विकला होंगीं। यदि क्रान्ति एवं शर अलग–अलग दिशाओं के हों तो इन आयन दृक् कर्म विकलाओं को जोड़ा जाता है तथा क्रान्ति एवं शर दोनों एक ही दिशाओं के हों तो इन आयन दृक् कर्म की विकलाओं को ऋण किया जाता है।

उत्पत्तिः— ग्रहोपरिगत ध्रुवप्रोतवृत्त–कदम्बप्रोतवृत्तयोरन्तरं क्रान्तिवृत्तेऽयनदृक्कर्मे विकलाः भवन्ति। क्षेत्रम्—

क्षेत्रम्—

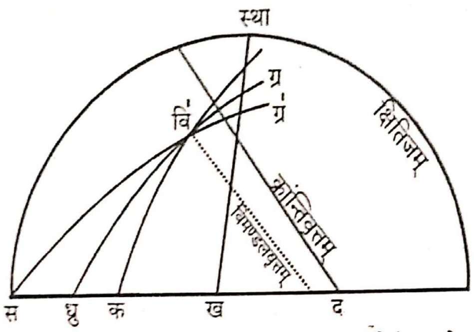

क्षेत्रे — स्था=ग्रह स्थानम्। ग्र=आयन दृक्कर्मसंस्कृतो ग्रहः। स्था ग्र=क्रान्तिवृत्तेआयनदृक्कर्म। ∠स्था विं ग्र=आयनवलनम्। ∠विं ग्र स्था = आयन वलन कोटिः। ∠विं स्था ग्र = ९०° । विं स्था = शरकलाः। स्वल्पान्तरात् विं स्था = विं ग्र तदा विं ग्र = शरकला। ततः विं स्था ग्र त्रिभुजे कोणानुपातेन ज्या

$$\text{स्था ग्र} = \text{ज्या आयन दृक्} = \frac{\text{शरज्या} \times \text{आयन वलनज्या}}{\text{त्रिज्या}}$$ । परन्तु लघुज्या विधिना

$$\text{शरज्या} = \frac{\text{शरकला} \times २}{६०}$$ । तथा आयनवलनज्या = सत्रिभग्रहक्रान्त्यंशा×२।

त्रिज्या=१२०। अतः $$\text{आयनदृक्कर्मज्या} = \frac{२ \times \text{शरकला} \times २ \times \text{सत्रिभग्रहक्रान्त्यंश}}{६० \times १२०}$$ ।

ज्या द्विभक्ता अंशास्ते च षष्टिवर्गगुणास्तदा विकला भवन्तीत्यतः—

$$\text{आयनदृक्कर्म विकलाः} = \frac{२ \times २ \times \text{शरकला} \times \text{सत्रिभग्रहक्रान्त्यंश} \times ३६००}{२ \times ६० \times १२०} =$$

$$\frac{\text{शरकला} \times \text{सत्रिभग्रहक्रान्त्यंश} \times ७२००}{७२००} = \text{शरकला} \times \text{सत्रिभग्रहक्रान्त्यंशा}$$। अत उत्पन्नमायनदृक्कर्मसाधनम्।

अथधनर्णतोत्पत्तिः— ग्रहस्यायनं मकरादि षडराशित्वादुत्तरं तदा शरोऽप्युत्तरस्तदा कदम्ब स्थानं ध्रुवात् दक्षिणे, क्रान्तिवृत्तश्च विमण्डलवृत्ताद्दक्षिणे भवतीत्यतः क्रान्तिवृत्ते कदम्बप्रोतीयस्थानतो ध्रुव प्रोतीयस्थानं पश्चिमतो भवति। तत्र

Scanned with CamScanner

स्थानीयग्रहे आयनदृक् कर्म विकलानां वियोगेन ध्रुवप्रोतवृत्तीय ''आयन दृक्कर्म संस्कृतो ग्रहो भवति। अनेनैव प्रकारेण कर्कादिषऽराशौ दक्षिणायने दक्षिणे शरेऽपि ध्रुवादुत्तरे कदम्बस्थाने क्रान्तिवृत्ते ग्रहस्थानादायन दृग्ग्रहस्य पश्चिमगतत्वात् फलमृणमेवोपपद्यते।

यदि उत्तरायणं शरो दक्षिणस्तदा ध्रुवात् कदम्ब स्थानं दक्षिणे, क्रान्तिवृत्तात विमण्डल वृत्तं च दक्षिणेऽतः क्रान्तिवृत्ते कदम्बप्रोतवृत्तस्य पूर्वतः स्थित्वादायनदृक्कर्म विकलाः स्थानीय गृहे धनं भवतीति स्पष्टमेव। अतः अयन शरयोरेकदिक्त्वे फलमृणं, भिन्न दिक्त्वे च धनमुपपन्नम्। यतः ग्रहनिष्ठायनतुल्यैव सत्रिभग्रहगोलदिशाभवति, अतः सत्रिभग्रह क्रान्तिविक्षेपयोर्भिन्नतुल्यदिशोरायन-दृक्कर्म फलं स्वमृणत्वकरणमुचितमेवेत्युत्पन्नम्।

ग्रह पर गया हुआ ध्रुव प्रोत वृत्त एवं कदम्ब प्रोत दोनों वृत्तों का अन्तर क्रान्तिवृत्त में आयन दृक्कर्म की विकला होती है।

चित्र में स्था=ग्रह का स्थान, ग्र=आयनदृक्कर्म संस्कृतग्रह, स्था ग्र=क्रान्तिवृत्त में आयन दृक् कर्म, $\angle$स्था विं ग्र = आयनवलन है। $\angle$विं ग्र स्था = आयनवलन कोटि, $\angle$विं स्था ग्र= ९०° तथा विं स्था शरकलायें हैं। स्वल्पान्तर से विंस्था = विं ग्र तो विं ग्र= शरकला हैं। विं स्था ग्र त्रिभुज में कोणानुपात से ज्या स्था ग्र = आयन दृक्ज्या = $\frac{\text{शरज्या}\times\text{आयन वलनज्या}}{\text{त्रिज्या}}$। लेकिन लघुज्या साधन को विधि से शरज्या = $\frac{\text{शरकला}\times २}{६०}$। तथा आयनवलनज्या = ३ राशि + ग्रह की क्रान्ति के अंश×२ । त्रिज्या=१२०। अतः आयनदृक्कर्मज्या

$$= \frac{२\times\text{शरकला}\times२\times\text{सत्रिभग्रहक्रान्त्यंश}}{६०\times१२०}$$

। ज्या में २ का भाग देने से अंश होंगें उन्हें ६० के वर्ग (६०×६०=३६००) से गुणा करने पर विकला होती है। अतः आयनदृक्कर्म विकला =

$$\frac{२\times२\times\text{शरकला}\times\text{सत्रिभग्रहक्रान्त्यंश}\times३६००}{२\times६०\times१२०} =$$

$$\frac{\text{शरकला}\times\text{सत्रिभग्रहक्रान्त्यंश}\times७२००}{७२००} = \text{शरकला}\times\text{सत्रिभग्रहकान्त्यंश}$$

। अतः आयन दृक्कर्मसाधन उत्पन्न हुआ।

धन एवं ऋण करने की उत्पत्ति— ग्रह मकरादि ६ राशियों में उत्तरायण में होने से शर भी उत्तरी होने से कदम्ब स्थान ध्रुव से दक्षिण में एवं क्रान्तिवृत्त विमण्डलवृत्त से दक्षिण में होता है, अतः क्रान्तिवृत्त में कदम्बप्रोत के स्थान से

Scanned with CamScanner

ध्रुवप्रोत का स्थान पश्चिम की ओर होता है। जिससे उस स्थान पर होने वाले ग्रह से आयनदृक्कर्म की विकलाओं को घटाने से ध्रुवप्रोतवृत्त का आयन दृक्कर्म से संस्कृत ग्रह होता है। इसी तरह कर्कादि दक्षिणायन में शर के होने पर भी ध्रुव से उत्तर में कदम्ब के होने पर क्रान्तिवृत्त के स्थान से आयनदृक् ग्रह के पश्चिम में गये होने के कारण फल को ऋण करना उत्पन्न होता है। यदि उत्तरी अयन हो एवं शर दक्षिणी हो तो ध्रुव से कदम्ब दक्षिण में होने से क्रान्तिवृत्त से विमण्डलवृत्त भी दक्षिण में होता है। अत: क्रान्तिवृत्त में कदम्ब प्रोतवृत्त से पूर्व की ओर स्थिर होने से आयनदृक्कर्म की विकलाओं को स्थानीय ग्रह में जोड़ा जाता है यह गोलज्ञों को स्पष्ट ज्ञात है। इसीलिए आयन एवं शर के एक दिशा में होने से फल को ऋण करना तथा अलग-अलग दिशाओं के होने पर योग करना उत्पन्न होता है। क्योंकि ग्रह एवं अयन के समान दिशा के होने से ही सत्रिभग्रहगोल दिशा होती है, अत: सत्रिभग्रह क्रान्ति एवं शर के भिन्न –भिन्न दिशाओं के एवं एक ही दिशाओं के होने पर आयन दृक्कर्म के फल को क्रमश: धन एवं ऋण करना सिद्ध होता है।

अभ्यास प्रश्न –

1. दृश: सम्बन्धि कर्म:?

   क. दृश्य: ख.दृश्यम् ग.दृक्कर्म: घ. अयन दृक्कर्म

2. मुख्यत: दृक्कर्म कितने प्रकार के होते हैं?

   क. १ ख. २ ग. ३ घ. ४

3. गणित द्वारा साधित ग्रह किस वृत्त का होता है?

   क. नाड़ी ख. क्रान्ति ग. अहोरात्र घ. उन्मण्डल

4. ध्रुवप्रोत समप्रोत वृत्त का अन्तर क्या कहलाता है।

   क. आक्ष दृक्कर्म ख. अयन दृक्कर्म ग. स्फुट दृक्कर्म घ. कोई नहीं

5. ध्रुवप्रोत कदम्बप्रोत वृत्त का अन्तर क्या होता है।

   क. स्फुट दृक्कर्म ख. अयनदृक्कर्म ग. आक्षदृक्कर्म घ. इनमें सभी

4.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि नक्षत्र एवं ग्रह की युति, दो ग्रहों की युति, ग्रह के उदयास्त साधन में, चन्द्रमा की श्रृंगोन्नति साधन में दृक्कर्म का संस्कार यथासम्भव पहले ही कर लेना चाहिये, ऐसा पूर्व में में बतलाया गया है। इसका आशय है कि दृक्कर्म से संस्कार किये जाने पर ही नाक्षत्र एवं ग्रह तथा दो ग्रहों की युति का भी विचार किया जाता है।

गणितीय दृष्टिकोण से क्रान्तिवृत्त स्थान से शराग्रगत दोनों की युति तो एक कदम्ब प्रोतवृत्त दोनों होने

पर ही उनके अन्तर का अभाव होता है। क्रान्तिवृत्त में तिरछे रूप में कदम्ब प्रोतवृत्त होता है। परन्तु कदम्ब की दोनों तारायें अत्यन्त सूक्ष्म होने से दिखाई न दे पाने से विपुलताराश्रित ध्रुवप्रोतवृत्त में दोनों के गये हुए होने से ही भास्करादि ने उनकी युति ध्रुवप्रोतवृत्त में कही है, अत: ग्रहों की युतियों में केवल आयनदृक्कर्म की आवश्यकता होती है। परन्तु वास्तविक युति तो उन दोनों की (नक्षत्र एवं ग्रह की अथवा दोनों ग्रहों की) कदम्ब सूत्र में स्थित होने पर ही होती है। भास्कराचार्य का भी यही कथन है। वासना भाष्य इसलिए कहा है – कदम्ब में प्रसिद्ध ताराओं का अभाव होने से देखने वाले को इस युति की प्रतीति नहीं हो पाती अत: ध्रुव सूत्र में ही युति कही है। युति प्राय: कदम्ब सूत्र में स्थित होने वाले दो की ही होती है। ग्रह के उदयास्त साधन करने में स्थानीय ग्रह को समप्रोतवृत्त का करने के लिए स्पष्ट दृक्कर्म की आवश्यकता होती है। अत: उक्त कर्मों (ग्रह एवं नक्षत्र की युति, दो ग्रहों की युति, ग्रहों के उदयास्त, चन्द्रश्रृंगोन्नति आदि साधन में) दृक्कर्म संस्कार किया जाना युक्तिसंगत है। दृक्कर्म किसे कहते है? दृश: कर्म: दृक्कर्म:। अर्थात् ग्रहों की वास्तविक स्थिति को दृश्य योग्य बनाने हेतु जो कर्म करते करते हैं, उसका नाम है – दृक्कर्म। यह तीन प्रकार का होता है – 1. अयन दृक्कर्म 2. आक्ष दृक्कर्म 3. स्पष्ट दृक्कर्म।

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

दृक्कर्म – दृश: कर्म: दृक्कर्म:।

आक्षदृक्कर्म – ध्रुवप्रोत-समप्रोतवृत्त का अन्तर आक्ष दृक्कर्म होता है।

अयन दृक्कर्म – ध्रुवप्रोत-कदम्बप्रोत वृत्त का अन्तर आयन दृक्कर्म कहलाता है।

स्फुट दृक्कर्म – अयनाक्ष दृक्कर्म के संस्कार करने पर स्पष्ट दृक्कर्म होता है।

दृग्ग्रह – दिखलाई पड़ने वाला ग्रह।

शर – दूरी।

नाड़ीवृत्त- ध्रुवस्थान से ९० अंश से निर्मित होने वाला वृत्त।

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – की उत्तरमाला

1. ग 2. ख 3. ख 4. क 5. ख

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) सिद्धान्तशिरोमणि – मूल लेखक – भास्कराचार्य, टीका – कृष्णचन्द्रद्विवेदी।

(ख) सूर्यसिद्धान्त – टिककार – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय।

(ग) सूर्यसिद्धान्त – टिकाकार – गणपति लाल शर्मा

(घ) ग्रहलाघवम् – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

(ड.) ग्रहलाघवम् - केदारदत्त जोशी

4.9 सहायक पाठ्यसामग्री

सूर्यसिद्धान्त – प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

सिद्धान्तशिरोमणि – डॉ0 सत्यदेव शर्मा

ग्रहलाघवम् – टिकाकार- प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

सूर्यसिद्धान्त – गणपति लाल शर्मा

सिद्धान्ततत्वविवेक – मूल लेखक – कमलाकर भट्ट, टिका – कृष्णचन्द्रद्विवेदी।

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. दृक्कर्म से आप क्या समझते हैं।
2. दृक्कर्म का प्रयोजन लिखिये?
3. अयन दृक्कर्म से क्या तात्पर्य है।
4. आक्ष दृक्कर्म का साधन कीजिये।
5. दृक्कर्म का साधन एवं संस्कार की उपपत्ति सहित वर्णन कीजिये।